दिल्ली उच्च न्यायालय : नई दिल्ली

उद्घोषित: 6 सितंबर, 2023

सि.वा.(मू.वा.) 475/2004 एवं आप.वि.अ. 7125/2012 एवं अंतर.आ. 15641/2010 एवं अंतर.आ. 8319/2012 एवं अंतर.आ. 11016/2012 एवं अंतर.आ. 19951/2012 एवं अंतर.आ. 19952/2012 एवं अंतर.आ. 12878/2013

सांघी ब्रदर्स (इंदौर) प्रा.लि. .....वादीगण

द्वारा: श्री अरविंद वर्मा, वरिष्ठ अधिवक्ता सह श्री ए.एस. माथुर, श्री प्रबल मेहरोत्रा, श्री शुभंकर, श्री उमंग कटारिया, सुश्री महिमा सिंह एवं सुश्री स्मृति शर्मा, अधिवक्तागण एवं श्री एच. जोशी, वादी सं. 1 व 2 (i)-(iii) की ओर से एआर श्री संकल्प गोस्वामी, वादी सं. 2(iv) की ओर से अधिवक्ता (वीसी के माध्यम से)

बनाम

कमलेंद्र सिंह .....प्रतिवादी

द्वारा: श्री जयंत मेहता, वरिष्ठ अधिवक्ता सह श्री विजय के सिंह एवं सुश्री अशिता छिब्बर, अधिवक्तागण
श्री अखिल सिब्बल, वरिष्ठ अधिवक्ता सह सुश्री फरेहा अहमद खान, अंतर.आ.

8319/2012 में गैर-आवेदक की ओर से अधिवक्ता

कोरम:

माननीय न्यायमूर्ति श्री चंद्रधारी सिंह

निर्णय

न्या. चंद्रधारी सिंह,

1. यह सिविल वाद वादीगण की ओर से निम्नलिखित राहत की मांग करते हुए दायर किया गया है:-

> "क) *प्रतिवादी के विरुद्ध तथा वादी के पक्ष में विनिर्दिष्ट पालन हेतु डिक्री पारित करें तथा प्रतिवादी को निर्देश दें कि वह संपत्ति (भूमि सहित; लगभग 1200 वर्ग गज का क्षेत्रफल तथा उस पर स्थित संरचनाएं) संख्या ए-9/29 वसंत विहार, नई दिल्ली वादी को हस्तांतरित/आबंटित/बेच दे; तथा*
>
> *ख) यदि यह माननीय न्यायालय विनिर्दिष्ट पालन हेतु डिक्री प्रदान न करना चाहे तो वादी के पक्ष में तथा प्रतिवादी के विरुद्ध 20,79,049 रुपए की राशि के साथ वाद की तिथि से वास्तविक वसूली की तिथि तक 18% प्रति वर्ष की दर से ब्याज सहित धनराशि के भुगतान हेतु डिक्री पारित करे; तथा*
>
> *ग) वादी के पक्ष में तथा प्रतिवादी, उसके सेवकों, एजेंटों, वारिसों, उत्तराधिकारियों एवं उसके अधीन या उसके माध्यम से दावा करने वाले अन्य लोगों के खिलाफ स्थायी व्यादेश का आदेश पारित करें, जिससे प्रतिवादी को उक्त संपत्ति संख्या ए-9/29 वसंत विहार, नई दिल्ली में अपने अधिकार, हक एवं हित को किसी अन्य व्यक्ति(व्यक्तियों) को हस्तांतरित/सौंपने/बेचने या अन्यथा निपटान से स्थायी रूप से रोका जा सके।*

घ) *वादी के पक्ष में तथा प्रतिवादी, उसके सेवकों, एजेंटों, वारिसों, उत्तराधिकारियों तथा उसके अधीन या उसके माध्यम से दावा करने वाले अन्य लोगों के खिलाफ स्थायी व्यादेश का आदेश पारित करें, जिससे प्रतिवादी को स्वर्गीय श्री सुरेन्द्र सिंह जी अलीराजपुर की दिनांक 5-11-1984 की वसीयत और वसीयतनामे के तहत या उससे संबंधित अपने अधिकार, हक एवं हित को किसी अन्य व्यक्ति(व्यक्तियों) को हस्तांतरित/सौंपने/बेचने या अन्यथा निपटान से स्थायी रूप से रोका जा सके तथा*

ङ) *ऐसे अतिरिक्त या अन्य आदेश पारित करें जो मामले की परिस्थितियों में उचित, उपयुक्त एवं आवश्यक समझे जाएं।"*

2. वादी सं. 1, कंपनी अधिनियम, 1956 के तहत पंजीकृत एक कंपनी है। वर्तमान वाद वादी कंपनी की ओर से वादी सं. 1 के प्रबंध निदेशक, अर्थात् वादी संख्या 2 के माध्यम से संस्थित किया जा रहा है।

3. प्रतिवादी स्वर्गीय श्री सुरेन्द्र सिंह जी के छोटे भाई हैं। स्वर्गीय श्री सुरेन्द्र सिंह जी के पास संपत्ति संख्या ए-9/29, वसंत विहार, नई दिल्ली (एतद्पश्चात् "वाद संपत्ति") में जमीन एवं संरचना सहित विभिन्न संपत्तियां थीं। उक्त वाद संपत्ति, अन्य बातों के साथ-साथ, वर्तमान वाद का विषय है।

4. उक्त वाद संपत्ति लगभग 1200 वर्ग गज की है, जिसका स्वामित्व स्वर्गीय श्री सुरेन्द्र सिंह जी के पास था, जिन्होंने दिनांक 5 नवंबर 1984 (एतद्पश्चात् "वर्ष 1984 की वसीयत") को एक वसीयत बनाई थी। उक्त वसीयत के तहत, प्रतिवादी ने अन्य बातों के साथ-साथ उक्त संपत्ति को इस

शर्त के अधीन वसीयत किया कि यदि संपत्ति किराए पर दी जाती है, तो किराये की आय को उक्त वसीयत के प्रावधानों के अनुसार वितरित किया जायेगा तथा यदि संपत्ति प्रतिवादी द्वारा बेची जाती है, तो बिक्री आय को उसमें निर्दिष्ट व्यक्तियों के अनुपात में विभाजित किया जायेगा।

5. वर्तमान वाद के लंबित रहने के दौरान, उक्त वसीयत मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के समक्ष प्रश्नगत थी, क्योंकि उक्त वसीयत की वैधता के संबंध में अन्य बातों के साथ-साथ श्रीमती ज्योति राठौर द्वारा प्रस्तुत 28 मार्च 1996 की एक अन्य वसीयत (एतद्पश्चात् "वर्ष 1996 की वसीयत") के साथ विवाद था। वाद संपत्ति के संबंध में, उक्त संपत्ति की चाबियाँ मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार के अभिरक्षा में थीं।

6. प्रतिवादी और वादी सं. 1 से वादी सं. 2 के माध्यम से दिनांक 2 दिसंबर 1998 को एक समझौता ज्ञापन (एतद्पश्चात् “समझौता ज्ञापन/समझौता”) के रूप में एक समझौता किया, जिसमें प्रतिवादी ने अन्य बातों के साथ-साथ सहमति व्यक्त की थी कि वह दावे वाली संपत्ति में अपने सभी हितों को सौंपेगा और/या बेचेगा और/या निपटाएगा, जिसमें शामिल अधिकार, विरासत, हक एवं दावे शामिल हैं, जिसके लिए वह वर्ष 1984 की वसीयत के अनुसार प्रमुख लाभार्थी के रूप में हकदार है। पक्षकारों ने सहमति व्यक्त की थी कि वादी प्रतिवादी को उक्त समनुदेशन/हस्तांतरण/निपटान हेतु प्रतिफल के रूप में 2.50 करोड़ रुपये की राशि का भुगतान करेगा।

7. दिनांक 2 दिसम्बर 1998 के उक्त समझौता ज्ञापन में पक्षकारों द्वारा निम्नलिखित बातों पर सहमति व्यक्त की गई थी:

क. अन्य बातों के साथ-साथ, पक्षकारों ने इस बात पर सहमति व्यक्त की थी कि प्रतिवादी के अनुरोध पर वादीगण उक्त संपत्ति की सुरक्षा, संरक्षण, रखरखाव, मरम्मत व जीर्णोद्धार के लिए समय-समय पर भुगतान करने एवं व्यय करने के लिए सहमत होंगे तथा वाद संपत्ति के कारण भुगतान किए गए/उपगत किए गए ऐसे सभी व्ययों को उक्त समझौते के अनुपालन के लिए भुगतान किए गए प्रतिफल के रूप में माना जाएगा।

ख. पक्षकारों ने अन्य बातों के साथ-साथ इस बात पर भी सहमति जताई थी कि प्रतिवादी ने वादी से अनुरोध किया है कि यदि आवश्यक हो तो वह वाद संपत्ति की सुरक्षा, संरक्षण, मरम्मत, जीर्णोद्धार व रखरखाव के लिए खर्च या अग्रिम ऋण ले। अन्य बातों के साथ-साथ इस बात पर भी विशेष रूप से सहमति हुई थी कि वादी अपने आप ही सभी आवश्यक खर्च उठा सकते हैं, जिसके लिए प्रतिवादी ने उनके अनुरोध पर भुगतान या खर्च करने पर सहमति जताई थी।

ग. पक्षकारों ने इस बात पर भी सहमति जताई कि वादीगण प्रतिवादी को मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के समक्ष उक्त प्रोबेट मामलों को अग्रेषित करने में सहायता करेंगे। पक्षकारों ने अन्य बातों के साथ-साथ इस बात पर भी सहमति जताई कि वादीगण प्रतिवादी को विधिक खर्चों को पूरा करने के लिए अग्रिम ऋण देंगे, जिसे उक्त समझौते के लिए भुगतान किया गया प्रतिफल माना जाएगा।

घ. अन्य बातों के साथ-साथ यह भी सहमति हुई कि दिनांक 2 दिसंबर 1998 का विशेष मुख्तारनामा एवं दिनांक 2 दिसंबर 1998 का सामान्य मुख्तारनामा (एतद्पश्चात् "मुख्तारनामा") के माध्यम से, प्रतिवादी द्वारा वादी सं. 2 (जो उक्त समझौते का निष्पादक था) के पक्ष में निष्पादित किया गया था, जिसने वादी सं. 2 को प्रतिवादी के लिए एवं उसकी ओर से उक्त संपत्ति के संबंध में समझौता ज्ञापन में उल्लिखित दायित्वों को पूरा करने के लिए अधिकृत और सशक्त बनाया था।

ङ. यह भी उल्लेख किया गया कि प्रतिवादी ने दिनांक 2 दिसंबर 1998 को एक वसीयत निष्पादित की, जिससे उसके निष्पादकों को वादी सं. 1 के पक्ष में उपरोक्त समझौते का पालन करने का आदेश दिया गया था।

च. पक्षकारों के बीच यह भी सहमति हुई कि जब भी वादी प्रतिवादी से वाद संपत्ति के समनुदेशन/हस्तांतरण/बिक्री का विलेख निष्पादित करने की मांग करेंगे, तो प्रतिवादी उसे निष्पादित करेगा तथा परिणामस्वरूप समझौते के अनुसार पूर्ण प्रतिफल प्राप्त करेगा।

छ. अन्य बातों के साथ-साथ यह भी सहमति हुई कि वादीगण प्रतिवादी की ओर से या वाद संपत्ति के कारण करों, सुरक्षा, रखरखाव, मरम्मत, विधिक लागतों व अन्य व्ययों आदि के भुगतान के रूप में किए गए सभी व्ययों को प्रतिवादी के खाते में डालेंगे तथा प्रतिवादी इसे अपनी ओर से किए गए भुगतान/व्यय के रूप में स्वीकार करेगा।

ज. अन्य बातों के साथ-साथ, पक्षकारों के बीच यह भी सहमति हुई कि यदि प्रोबेट केस का निर्णय प्रतिवादी के विरुद्ध होता है, तो वह

सभी ऋणों और उसे दिए गए भुगतान की गई राशियों और/या उसके खाते पर व्यय की गई राशियों को प्रतिवादी द्वारा ऐसे प्रस्ताव के लिए आरक्षित या चिन्हित संपत्तियों से वसूल करने के लिए स्वतंत्र होगा।

झ. पक्षकारों के बीच यह भी सहमति हुई कि प्रतिवादी वाद संपत्ति को न तो बेचेगा, न गिरवी रखेगा, न उपहार देगा, न हस्तांतरित करेगा, न ही उसका निपटान करेगा, न ही उस पर कोई विल्लगंम डालेगा। पक्षकारों के बीच यह सहमति हुई कि यदि कोई पक्ष समझौते के तहत निर्धारित दायित्वों से बचता है, तो दूसरे पक्ष को अधिनियम, 1963 (एतद्पश्चात् "अधिनियम") के तहत वाद दायर करके अपने अधिकारों को लागू करने का अधिकार होगा।

ञ. पक्षकारों के बीच यह भी सहमति हुई कि उक्त समझौता तब तक वैध रहेगा जब तक कि दोनों पक्षकारों द्वारा या किसी एक पक्षकार के कहने पर तीन महीने का नोटिस देकर इसे रद्द नहीं कर दिया जाता, बशर्ते कि पक्षकार हर साल समझौते का पुनर्विलोकन करेंगे।

8. उक्त समझौता ज्ञापन के अनुसरण में, प्रतिवादी ने वादी संख्या 2 के पक्ष में ऊपर उल्लिखित मुख्तारनामा निष्पादित किया था। वादी संख्या 2 ने वादी संख्या 1 के लिए कार्य करते हुए एवं उपरोक्त मुख्तारनामा के तहत, अन्य बातों के साथ-साथ, प्रतिवादी के लिए विभिन्न न्यायालयों में लंबित विभिन्न मुकदमों को प्रेषित किया एवं उनका बचाव किया था।

9. मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने दिनांक 21 मार्च 2003 के आदेश के तहत वाद संपत्ति का कब्ज़ा लेने हेतु एक रिसीवर/कमिश्नर नियुक्त किया था। जिसके अनुसार वादीगण ने रखरखाव के उद्देश्य से उक्त संपत्ति पर अपने द्वारा नियुक्त सुरक्षा गार्ड/गार्डों को वापस बुला लिया था।

10. न्यायालय ने रिसीवर/कमिश्नर को दिल्ली स्थित उक्त संपत्ति का दौरा करने तथा बकाया संपत्ति कर आदि का भुगतान करने के लिए उक्त संपत्ति को किराये पर देने की संभावना तलाशने का निर्देश दिया था। उक्त रिसीवर/कमिश्नर ने उक्त परिसर का दौरा किया था तथा उक्त संपत्ति को किराये पर देने के लिए विज्ञापन भी दिया था।

11. मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय में लंबित प्रोबेट मामले में वादीगण को कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था, जिस पर उन्होंने अपना उत्तर दाखिल किया तथा वादीगण के उक्त उत्तर के प्रत्युत्तर में प्रतिवादी ने अन्य बातों के साथ-साथ समझौता ज्ञापन, मुख्तारनामा एवं वर्ष 1984 की वसीयत के निष्पादन को स्वीकार किया था। प्रतिवादी ने दावा किया कि उसने समझौता ज्ञापन को निरस्त कर दिया है तथा मई 2003 में वादी सं. 2 को इसकी सूचना दे दी गयी थी। प्रतिवादी द्वारा आगे कहा गया कि उसने उक्त मुख्तारनामा को भी निरस्त कर दिया था।

12. वर्तमान वाद के लंबित रहने के दौरान, यह बात इस न्यायालय के संज्ञान में लाई गई है कि मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने दिनांक 7 मई 2010 के

निर्णय के तहत प्रतिवादी के पक्ष में प्रोबेट के मुद्दे पर निर्णय दिया है, जिसके तहत वर्ष 1984 की वसीयत की वैधता बरकरार रखी गई है। इसलिए, प्रतिवादी वाद संपत्ति का मालिक है।

<u>प्रस्तुतियाँ</u>

(***वादी की ओर से***)

13. वादी की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अरविंद वर्मा ने प्रस्तुत किया कि यह प्रतिवादी ही था जिसने वाद संपत्ति के संबंध में समझौता ज्ञापन के निष्पादन के लिए वादी संख्या 2 से अनुरोध किया था।

14. यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रतिवादी ने श्री अरशद रशीद (अभि.सा. - 3) को वादी सं. 2 को यह समझाने के लिए उत्प्रेरित किया कि वह प्रतिवादी की सहायता करने के लिए एक समझौता करे, जिसमें वह वाद संपत्ति की सुरक्षा एवं रखरखाव के लिए खर्च उठाएगा तथा यह खर्च उक्त संपत्ति के अंतिम निपटान के दौरान, अर्थात् प्रोबेट के अनुदान के बाद, 2.50 करोड़ रुपये के कुल प्रतिफल में समायोजित किया जाएगा।

15. यह प्रस्तुत किया गया है कि वर्तमान वाद दायर करने का वाद हेतुक वादीगण के पक्ष में दिनांक 15 अप्रैल 2004 को या उसके आसपास उत्पन्न हुआ। उक्त तिथि को, मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने वादी को कारण बताओ नोटिस जारी किया तथा उक्त नोटिस के जवाब में, वादी ने अपना उत्तर दाखिल किया। प्रतिवादी ने वादी के उत्तर के जवाब में *अन्य बातों के साथ-साथ* कहा था

कि उसने समझौता ज्ञापन को रद्द कर दिया है तथा वादी के पक्ष में निष्पादित मुख्तारनामा को रद्द कर दिया है।

16. यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रतिवादी द्वारा कथित निरस्तीकरण के बारे में वादी को कभी सूचित नहीं किया गया। वादी समझौते के संबंध में अपने सभी दायित्वों का निष्पादन कर रहा था।

17. यह तर्क दिया गया है कि यदि ऐसा कोई निरस्तीकरण भी हुआ, तो भी यह वादी के पक्ष में प्रतिवादी के खिलाफ विनिर्दिष्ट पालन के लिए एक नया वाद संस्थित करने के लिए वाद हेतुक का एक नया कारण पैदा करेगा। यह भी कहा गया है कि प्रतिवादी ने बेईमानी से समझौता ज्ञापन एवं मुख्तारनामा को रद्द करने की कोशिश की थी।

18. यह प्रस्तुत किया गया है कि वादीगण ने कभी भी समझौता ज्ञापन एवं मुख्तारनामा को निरस्त करने पर सहमति नहीं दी। यदि प्रतिवादीगण ने मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के समक्ष अपने उत्तर में समझौता ज्ञापन को कथित रूप से निरस्त करने का बयान नहीं दिया होता, तो वादीगण के पक्ष में कोई कार्यवाही का कारण नहीं बनता।

19. यह प्रस्तुत किया गया है कि वादी के लिए उक्त समझौता ज्ञापन एवं मुख्तारनामा के निरस्तीकरण को चुनौती देने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वर्तमान वाद की तिथि तक समझौता ज्ञापन एवं मुख्तारनामा के

निरस्तीकरण या रद्दीकरण के बारे में कोई पत्र-व्यवहार नहीं हुआ है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि वाद दायर किए जाने के बाद भी समझौता ज्ञापन एवं मुख्तारनामा का कभी भी कोई वैध निरस्तीकरण या रद्दीकरण नहीं हुआ है।

20. यह प्रस्तुत किया गया है कि समझौता ज्ञापन के खंड 20 के अनुसार, प्रतिवादी ने *"पुनर्विलोकन"* शब्द की गलत व्याख्या *"नवीकृत"* के रूप में की है। उक्त खंड को यहाँ पुनः प्रस्तुत किया गया है:

> *"20. यह समझौता तब तक वैध रहेगा जब तक कि इसे पक्षकारों द्वारा रद्द नहीं कर दिया जाता है या किसी भी पक्षकार द्वारा तीन महीने का नोटिस देने पर रद्द नहीं कर दिया जाता है, बशर्ते कि पक्षकार प्रत्येक वर्ष के बाद समझौते का पुनर्विलोकन करेंगे।"*

ये दोनों शब्द समानार्थी नहीं हैं एवं इनका अर्थ बिल्कुल अलग है। इसलिए, समझौते का पुनर्विलोकन हर साल पक्षकारों द्वारा किया जाना था, इसका नवीनीकरण नहीं किया जाना था।

21. यह प्रस्तुत किया गया है कि वादीगण ने मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के समक्ष प्रोबेट मामले में कार्यवाही के संबंध में प्रतिवादी को सदैव सूचित किया है। वादीगण ने हमेशा प्रतिवादी के साथ मामले पर चर्चा की थी तथा हर साल कई मौकों पर समझौता ज्ञापन का "पुनर्विलोकन" किया था।

22. वादी के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे यह प्रस्तुत किया कि वे कभी भी वाद संपत्ति के कब्जे में नहीं थे। हालांकि, समझौता ज्ञापन की शर्तों को

आगे बढ़ाते हुए, वादी ने उक्त संपत्ति की सुरक्षा हेतु सुरक्षा गार्ड तैनात किये तथा इसलिए, इस तरह वादी ने काफी राशि खर्च की थी।

23. यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रतिवादी ने वादी से अनुरोध किया था कि चूंकि वह अपनी वृद्धावस्था के कारण संपत्ति की देखभाल करने में सक्षम नहीं है, इसलिए वादी प्रतिवादी की ओर से ऐसा कर सकते हैं। प्रतिवादी के अनुरोध पर ही वादीगण ने समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए।

24. यह भी प्रस्तुत किया गया है कि प्रतिवादी ने बिना किसी प्रपीड़न के उक्त समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए थे तथा वादी की ओर से बिना किसी प्रपीड़न के उक्त समझौता ज्ञापन पर स्वेच्छा से हस्ताक्षर किए गए थे।

25. यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रतिवादी द्वारा किए गए सभी तर्क काल्पनिक कहानियां हैं यह विचार बाद में उत्पन्न किये गये हैं और यह प्रतिवादी की ओर से समझौता ज्ञापन को निष्पादित न करने के दुर्भावनापूर्ण इरादे से प्रस्तुत किए गए हैं।

26. यह भी कहा गया है कि प्रतिवादी हमेशा से ही समझौता ज्ञापन के अनुसार संविदा के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए तैयार और इच्छुक रहा है, तथापि, यह लगभग मार्च 2004 की बात है, जब प्रतिवादी ने मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के समक्ष अपना जवाब दाखिल किया तथा समझौता ज्ञापन के अनुसार अपने दायित्वों को पूरा करने में अपनी अनिच्छा व्यक्त की।

27. यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रतिवादी ने कथित दुर्व्यपदेशन हेतु कोई भी कारण नहीं बताया है एवं वादी की ओर से कथित उत्प्रेरणा क्या थी। इसके अलावा, प्रतिवादी अभिलेख पर कोई भी सामग्री पेश करने में विफल रहा है कि वादी की ओर से कथित रिष्टि क्या थी जिसके कारण प्रतिवादी को समझौता ज्ञापन रद्द करना पड़ा।

28. समझौता ज्ञापन के खंड 16 के संबंध में यह प्रस्तुत किया गया है कि इसे जिस संदर्भ में इसे लिखा गया है, सही अर्थ में व्याख्या करने के लिए मूल रूप में पढ़ा जाना चाहिए। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 31 व 32 के प्रावधानों का वर्तमान वाद पर कोई असर नहीं पड़ता है।

29. यह प्रस्तुत किया गया है कि वर्तमान वाद में समझौता ज्ञापन भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 31 व 32 से प्रभावित नहीं है। यह प्रस्तुत किया गया है कि कानून एक आकस्मिक संविदा को लागू नहीं कर सकता है, इसलिए उक्त समझौता ज्ञापन अमान्य नहीं है, तथा यह वादी के पक्ष में अधिकार एवं हक प्रदान करता है।

30. यह भी कहा गया है कि आकस्मिक संविदा को भी बाद में लागू किया जा सकता है तथा इस संबंध में विधि में कोई रोक नहीं है। वर्तमान तथ्यों में, समझौता ज्ञापन आकस्मिक संविदा नहीं है और भले ही तर्कों के लिए यह मान

लिया गया हो कि प्रश्नगत संविदा आकस्मिक थी, प्रतिवादी ने स्वीकार किया है कि संविदा आकस्मिक है। उसे अपनी स्वयं की स्वीकृति के आधार पर कार्य करना चाहिए एवं कम से कम, उक्त संपत्ति में किसी तीसरे पक्षकार के हितों को अलग करने या अन्यथा बनाने से रोका जाना चाहिए।

31. यह प्रस्तुत किया गया है कि वादी सदैव उक्त परिसर के संबंध में वाद संपत्ति की सभी देनदारियों को वहन करने के लिए तैयार रहे हैं, चाहे वह संपत्ति कर या किसी अन्य खर्च की प्रकृति में हो।

32. यह प्रस्तुत किया गया है कि समझौता ज्ञापन के तहत अपने दायित्वों के पालन में वादी द्वारा किए गए विभिन्न व्ययों को अनुसूची ए में पुन: प्रस्तुत किया गया है, जिसे शिकायत के साथ संलग्न किया गया है और यह कुल 20,79,049/- रुपये की राशि है। उक्त राशि में रखरखाव, कानूनी, परामर्श शुल्क, विविध व्यय आदि के मद में व्यय शामिल हैं।

33. यह प्रस्तुत किया गया है कि वादी समझौता ज्ञापन के तहत अपने दायित्वों को पूरा करने के लिए तैयार रहे हैं और समझौते की शर्तों को प्रभावी बनाने के लिए उन्होंने सदैव उक्त समझौता ज्ञापन के तहत सभी कर्तव्यों और दायित्वों को पूरा किया है।

34. वादीगण ने समझौता ज्ञापन और मुख्तारनामा के अनुसरण में, मुकदमेबाजी एवं वाद संपत्ति के रखरखाव और देखरेख पर भारी लागत वहन

की। वादीगण ने उक्त समझौता ज्ञापन के अनुसरण में अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित कृत्य किए थे:

क) वादीगण ने प्रतिवादी के प्रोबेट मामले को मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय में कम से कम 21 फरवरी 2003 तक की कार्यवाही के दौरान पूरी लगन से आगे बढ़ाने के लिए सभी आवश्यक व्यवस्थाएं की हैं, जिस समय प्रतिवादी ने स्वयं विधिक प्रतिनिधित्व किया था। वादीगण ने प्रतिवादी को विभिन्न मुकदमों में प्रतिनिधित्व दिलाने के लिए सभी आवश्यक व्यवस्थाएं की थीं।

ख) वादीगण ने मार्च 2003 के पहले सप्ताह तक वाद संपत्ति की सुरक्षा हेतु सुरक्षा एजेंसी के माध्यम से सुरक्षा की व्यवस्था भी कर ली थी। सुरक्षाकर्मियों को मोबाइल फोन भी मुहैया कराए गए थे और इसका खर्च भी वादीगण ने ही उठाया था।

ग) वादीगण ने सुरक्षा गार्डों के लिए एक पर्यवेक्षक भी उपलब्ध कराया था जो वाद संपत्ति के रख-रखाव और देखरेख का ध्यान रखेगा। उपरोक्त सभी खर्च वादीगण द्वारा वहन किए गए थे।

घ) वादीगण ने प्रतिवादी को मासिक भत्ते के रूप में तथा समझौता ज्ञापन के तहत प्रतिफल के आंशिक भुगतान के रूप में 10,000/- रुपए प्रतिमाह का भुगतान किया। उक्त भुगतान दिसंबर 1998 से मार्च 2001 तक नियमित रूप से किए गए, जिनकी राशि 2,80,000/- रुपए थी।

ङ) वादीगण ने प्रतिवादी को परामर्श शुल्क के रूप में 15,000/- रुपये प्रति माह का भुगतान भी किया, जैसा कि समझौता ज्ञापन के खंड 4 में प्रावधान है। दिसंबर 1998 से अगस्त 2000 तक के महीनों के लिए इस तरह के भुगतान 2,70,000/- रुपये के बराबर किए गए थे।

च) वादीगण ने प्रतिवादी की ओर से दिल्ली नगर निगम (इसके बाद "दि.न.नि.") के समक्ष मार्च 2001 या उसके आसपास, तथा मार्च 2002 में भी, अन्य बातों के साथ-साथ, इस आशय से प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की थी कि उक्त संपत्ति मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के नियंत्रण में है, तथा कोई भी कार्रवाई जो की जानी है, वह मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय की अनुमति प्राप्त करने के बाद ही की जानी चाहिए।

छ) उपरोक्त व्यवस्थाओं के संबंध में वादी द्वारा भुगतान किए गए और/या किए गए विभिन्न व्ययों का विवरण वर्तमान

शिकायत के साथ संलग्न अनुसूची क में विस्तृत रूप से दिया गया है। वादी ने दिनांक 31 मार्च 2004 तक समझौता ज्ञापन के अनुसरण में लगभग 20,79,049/- रुपए का भुगतान किया है और/या व्यय/लागतें आदि वहन की हैं।

35. यह भी प्रस्तुत किया गया है कि उक्त संपत्ति अभी भी पट्टाधृत संपत्ति है और वादीगण इसे पूर्ण स्वामित्व संपत्ति में परिवर्तित करने के लिए सभी कदम उठाने एवं खर्चा करने के लिए तैयार हैं, यदि यह समझौते की शर्तों के निष्पादन के लिए आवश्यक है।

36. यह प्रस्तुत किया गया है कि वादपत्र में वर्णित तथ्यात्मक पृष्ठभूमि एवं परिस्थितियां यह दर्शाती हैं कि प्रतिवादी ने अब उक्त समझौता ज्ञापन के तहत अपने दायित्वों से मुकरने की कोशिश की है तथा इसलिए, वादी विधि और साम्या दोनों में इसके तहत संविदा के विनिर्दिष्ट पालन की मांग करने के हकदार हैं।

37. यह प्रस्तुत किया गया है कि वाद हेतुक दिनांक 15 अप्रैल 2004 के आसपास आया, जब प्रतिवादी ने मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के समक्ष वादी के कारण बताओ नोटिस के जवाब में अपना उत्तर दायर किया और जिसने वादी को यह नोटिस दिया कि प्रतिवादी की ओर से दायित्वों का पालन करने से इनकार किया जा रहा है। इसलिए, वर्तमान वाद समय के भीतर एवं उचित

अधिकार क्षेत्र में दायर किया गया है क्योंकि वाद संपत्ति नई दिल्ली में स्थित है।

38. यह प्रस्तुत किया गया है कि वादी द्वारा प्रस्तुत तर्कों को ध्यान में रखते हुये, वादी वादपत्र में मांगी गई राहतों का हकदार है और वर्तमान वाद वादी के पक्ष में निर्णय योग्य है।

(प्रतिवादी की ओर से)

39. *इसके विपरीत,* प्रतिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने वादी के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा किए गए कथनों का पुरजोर विरोध किया और कहा कि वर्तमान वाद प्रतिवादीगण को परेशान करने और उन पर दबाव बनाने के एकमात्र उद्देश्य से दायर किया गया है, जिसके वे विधिक रूप से हकदार नहीं हैं। वर्तमान वाद विधिक प्रक्रिया का दुरुपयोग करने के अलावा और कुछ नहीं है।

40. यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रतिवादी वर्ष 1984 की वसीयत के अनुसार वाद संपत्ति में केवल 55% हिस्से का ही मालिक है, तथा वादी द्वारा दुर्व्यपदेशन एवं उत्प्रेरणा के कारण समझौता ज्ञापन और मुख्तारनामा निष्पादित किया गया था।

41. यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रतिवादी का वादी सं. 2 से परिचय था, जो वादी सं. 1 कंपनी का प्रबंध निदेशक था। वादी सं. 1 ने वाद संपत्ति को कथित खतरे के संबंध में कुछ तथ्यों को गलत तरीके से प्रस्तुत किया था।

42. यह प्रस्तुत किया गया है कि वादी ने प्रतिवादी को समझौता करने के लिए मजबूर किया क्योंकि प्रतिवादी एक बूढ़ा व्यक्ति है और उक्त संपत्ति की देखभाल करने की स्थिति में नहीं है। इसलिए, उक्त संपत्ति की सुरक्षा के लिए, प्रतिवादी को वादी के साथ कुछ व्यवस्था करनी चाहिए क्योंकि वादी के दिल्ली में अच्छे संबंध हैं। इसलिए, वादी ने प्रतिवादी को उक्त संपत्ति के संबंध में समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर करने के लिए मजबूर किया था।

43. यह प्रस्तुत किया गया है वादीगण के दुर्व्यपदेशन एवं उत्प्रेरणा के कारण, प्रतिवादी ने सामान्य मुख्तारनामा एवं दिनांक 2 दिसंबर 1998 की विशेष मुख्तारनामा का निष्पादन किया था। हालांकि, वादी की रिष्टि से अवगत होने पर, प्रतिवादी ने समझौता ज्ञापन, सामान्य मुख्तारनामा एवं विशेष मुख्तारनामा को रद्द करने एवं प्रतिसंहरण करने का निर्णय लिया।

44. यह भी प्रस्तुत किया गया है कि प्रतिवादी ने उस समय समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए जब वादी के पास प्रतिवादी की वसीयत पर अभिभावी होने का अवसर था। प्रतिवादी प्रोबेट के अनुदान हेतु मुकदमेबाजी में था, जिसने उसे बहुत मानसिक दबाव में डाल दिया था तथा वादी ने उक्त स्थिति का फायदा उठाया एवं दबाव में प्रतिवादी के हस्ताक्षर प्राप्त किये।

45. यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रतिवादी द्वारा हस्ताक्षरित समझौता ज्ञापन जल्दबाजी में किया गया था एवं यह इस तथ्य से परिलक्षित होता है कि समझौता ज्ञापन कभी भी किसी स्टाम्प पेपर पर निष्पादित नहीं किया गया था।

46. यह भी प्रस्तुत किया गया है कि समझौता ज्ञापन के अनुसार, वादीगण समय-समय पर उक्त संपत्ति की सुरक्षा, संरक्षण, रखरखाव, मरम्मत एवं नवीकृत करने हेतु सहमत हुए थे। हालांकि, वादीगण उक्त समझौता ज्ञापन में उल्लिखित नियमों एवं शर्तों का पालन करने में बुरी तरह विफल रहे। वादीगण ने शुरू से ही समझौता ज्ञापन की शर्तों का उल्लंघन किया एवं प्रतिवादी को वाद संपत्ति के संबंध में विकास के बारे में अनभिज्ञ रखा।

47. यह प्रस्तुत किया गया है कि वादीगण समझौता ज्ञापन के अनुसार नगरपालिका कर, बिजली शुल्क व अन्य व्यय का भुगतान करने के लिए सहमत हुए थे। हालांकि, वादीगण ने दुर्भावनापूर्ण आशय से संपत्ति के ह्रास होने देने से भंग कारित किया है, जिससे वाद संपत्ति के मूल्य में गिरावट आई है।

48. यह भी प्रस्तुत किया गया है कि वादी दि.न.नि. को नगरपालिका कर का भुगतान करने में भी विफल रहा और नगरपालिका कर का भुगतान करने में वादी की ओर से उक्त चूक के कारण, दि.न.नि. ने उक्त संपत्ति की कुर्की के लिए नोटिस जारी किया।

49. आगे यह भी कहा गया है कि प्रतिवादी ने मई 2003 में ही वादी को सूचित कर दिया था कि उसने मुख्तारनामा एवं समझौता ज्ञापन का प्रतिसंहरण कर दिया है।

50. यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रतिवादी ने मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के समक्ष दायर अपने उत्तर में दावा किया था कि उक्त दस्तावेज रद्द कर दिए गए हैं और वापस ले लिए गए हैं। हालांकि, वादी प्रतिवादी को उक्त दस्तावेजों के आधार पर वाद संपत्ति के संबंध में कार्रवाई करने एवं तीसरे पक्ष के हित को आगे बढ़ाने की धमकी दे रहे हैं।

51. यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रतिवादी को उक्त समझौता ज्ञापन के तहत प्रतिफल के आंशिक भुगतान के रूप में 2,80,000/- रुपये की राशि कभी नहीं मिली, जैसा कि वादी द्वारा आरोप लगाया गया है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि प्रतिवादी को वादी से केवल 2,70,000/- रुपये की राशि प्राप्त हुई। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि प्रतिवादी ने दिनांक 22 जून 2004 को मांगदेय ड्राफ्ट संख्या 533247 के माध्यम से 2,70,000/- रुपये की उक्त राशि वादी को वापस कर दी थी। हालाँकि, वादी द्वारा इसे प्रतिवादी को वापस कर दिया गया था। यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रतिवादी अभी भी 2,70,000/- रुपये की उक्त राशि वापस करने के लिए तैयार है।

52. यह प्रस्तुत किया गया है कि किसी भी तकनीकी पेचीदगी से बचने के लिए, प्रतिवादी ने दिनांक 26 अप्रैल 2004 को सामान्य मुख्तारनामा व विशेष

मुख्तारनामा के निरस्तीकरण के पंजीकृत विलेख के माध्यम से मुख्तारनामा को निरस्त कर दिया।

53. यह प्रस्तुत किया गया है कि मुख्तारनामा का निरस्तीकरण उप-पंजीयक, दिल्ली के समक्ष विधिवत पंजीकृत है एवं प्रतिवादी ने दिनांक 1 जुलाई 2004 को अंग्रेजी दैनिक 'द हिंदू' में एक सार्वजनिक नोटिस भी प्रकाशित किया है। इसके अलावा, प्रतिवादी ने वादी को एक कानूनी नोटिस भी भेजा था जिसमें दोहराया गया था कि उक्त दस्तावेज निरस्त हैं।

54. यह प्रस्तुत किया गया है कि समझौता ज्ञापन के खंड 16 के अनुसार, उक्त समझौता तभी वैध है जब इसका प्रत्येक वर्ष पुनर्विलोकन किया जाता है। हालाँकि, पक्षकारों द्वारा इसके निष्पादन के बाद समझौता ज्ञापन का कभी पुनर्विलोकन नहीं किया गया। इसलिए, खंड 16 के अनुसार समझौता ज्ञापन को अमान्य माना जाता है एवं इसके पक्षकारों को उक्त समझौता ज्ञापन के तहत अपने दायित्वों को पूरा करने से मुक्त कर दिया जाता है।

55. यह भी कहा गया है कि उक्त समझौता ज्ञापन अमान्य है तथा प्रतिवादी द्वारा निरस्त किया गया है, इसलिए इस पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। समझौता ज्ञापन के निष्पादन के संबंध में प्रतिवादी के पास कोई हस्तांतरणीय अधिकार नहीं है। इसलिए उक्त समझौता ज्ञापन भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 31 व 32 के तहत एक आकस्मिक संविदा है।

56. यह प्रस्तुत किया गया है कि आकस्मिक संविदा में कुछ करने या न करने की अवधारणा को संदर्भित किया जाता है, यदि कोई घटना, ऐसे संविदा के लिए संपार्श्विक होती है या नहीं होती है, तो विधि द्वारा इसे लागू नहीं किया जा सकता है। इसलिए, समझौता ज्ञापन अमान्य होने के कारण, उक्त संपत्ति के संबंध में वादी के पक्ष में कोई अधिकार एवं हक प्रदान नहीं करता है।

57. यह भी कहा गया है कि वादीगण संविदा के तहत निर्धारित तरीके से वाद संपत्ति के रखरखाव एवं देखरेख के अपने दायित्वों का पालन करने में विफल रहे हैं, जो इसकी ह्रास स्थिति से स्पष्ट है। इसके अलावा, वादीगण बकाया राशि व कर का भुगतान करने में विफल रहे, जिसके कारण दि.न.नि. के समक्ष आगे मुकदमा चला।

58. यह भी कहा गया है कि वादी ने कभी भी प्रतिवादी की ओर से मुकदमे नहीं लड़े या बचाव नहीं किया और न ही वादी के पास न्यायालय में प्रतिवादी के हितों की रक्षा करने का कोई अधिकार है। चूंकि प्रतिवादी को स्वयं अपने हितों की रक्षा करनी थी, इसलिए उसने विभिन्न न्यायालयों के समक्ष मामलों की रक्षा और उन्हें आगे बढ़ाने में कानूनी खर्च वहन किया।

59. यह प्रस्तुत किया गया है कि वादी का उक्त संपत्ति में कोई अधिकार या हित नहीं है, इसलिए वे उनके द्वारा मांगी गई राहत के हकदार नहीं हैं। इस बात से इनकार किया जाता है कि वादी ने उक्त समझौता ज्ञापन के अनुसरण

में कोई खर्च किया है। इस बात से भी इनकार किया जाता है कि वादी कथित रूप से किसी भी ब्याज राशि के हकदार हैं।

60. यह प्रस्तुत किया गया है कि पक्षकारों के बीच कोई लेन-देन नहीं हुआ है क्योंकि समझौता अमान्य था। इसके अलावा, इस बात से इनकार किया जाता है कि दिनांक 15 अप्रैल 2004 के आसपास वादी के पक्ष में कोई वाद हेतुक उत्पन्न हुआ था, तथा उक्त कथन के अनुसरण में, वादी के पक्ष में तत्काल वाद दायर करने के लिए कोई कार्रवाई का कारण उत्पन्न नहीं होता है।

61. उपरोक्त पैराग्राफों में किए गए निवेदनों को ध्यान में रखते हुये, प्रतिवादी के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रार्थना की है कि वाद में कोई गुणागुण नहीं होने के कारण इसे खारिज किया जाना चाहिए।

<u>मुद्दे</u>

62. उपर्युक्त परस्पर विरोधी अभिवचनों के आलोक में, इस न्यायालय की विद्वान पूर्ववर्ती न्यायपीठ (चेक) द्वारा दिनांक 3 सितंबर 2007 को निम्नलिखित मुद्दे तैयार किए गए थे। इसके अलावा, दिनांक 1 दिसंबर 2012 के एक आदेश के माध्यम से, इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने आ.प्र.अ (मू.वा.) 175/2004 में, मुद्दा सं. 6 को इस सीमा तक संशोधित किया कि इसमें 'जीपीए' शब्द शामिल किया गया तथा संशोधित मुद्दे का भी यहाँ उल्लेख

किया गया है। निम्नलिखित कारणों से उनमें से प्रत्येक के खिलाफ निष्कर्षों के साथ तैयार किए गए मुद्दे निम्न पुन: प्रस्तुत किए गए हैं।

1. क्या वादी संपत्ति संख्या ए-9/29, वसंत विहार, नई दिल्ली के संबंध में अपने पक्ष में निष्पादित दस्तावेजों के विनिर्दिष्ट पालन का हकदार है? ओपीपी
2. यदि वादी विनिर्दिष्ट पालन के लिए हकदार नहीं है, तो क्या वादी 20,79,049/- रुपए की वसूली के लिए धन डिक्री के लिए हकदार है? ओपीपी
3. क्या वादी ब्याज का हकदार है? यदि हां, तो किस राशि पर, किस दर पर तथा कितनी अवधि के लिए? ओपीपी
4. क्या वादी समझौते के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए तैयार एवं इच्छुक है? ओपीपी
5. क्या वादी स्थायी व्यादेश के आदेश का हकदार है जैसा कि वादी ने दावा किया है? ओपीपी
6. क्या दिनांक 2 दिसंबर 1998 के समझौता ज्ञापन, जीपीए एवं एसपीए को प्रतिवादीगण द्वारा प्रतिसंहरण कर दिया गया था? यदि हाँ, तो इसका क्या प्रभाव हुआ? ओपीडी
7. राहत?

<u>विश्लेषण एवं निष्कर्ष</u>

63. मामले की सुनवाई विस्तार से हुई एवं दोनों पक्षकारों के विद्वान अधिवक्तागण ने अपनी दलीलें पेश कीं। इस न्यायालय ने अभिलेख पर मौजूद सभी सामग्री का भी अवलोकन किया है। इस न्यायालय ने मामले के तथ्यात्मक परिदृश्य एवं पक्षकारों द्वारा भरोसा किए गए न्यायिक निर्णयों पर उचित रूप से विचार किया है।

64. इस स्थिति में, इस न्यायालय के लिए किसी संविदा के विनिर्दिष्ट निष्पादन के लिए वाद में न्यायालय के दायरे व शक्तियों को समझना आवश्यक है। ***मन कौर बनाम हरतार सिंह संघा,*** **(2010) 10 एससीसी 512 में**, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निम्नलिखित अवलोकन किया गया था:

> "*28. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वादी द्वारा अचल संपत्ति से संबंधित बिक्री के संविदा के विनिर्दिष्ट निष्पादन की मांग करने के लिए, तथा न्यायालय द्वारा ऐसे विनिर्दिष्ट निष्पादन को प्रदान करने के लिए, यह आवश्यक नहीं है कि संविदा में ऐसा विनिर्दिष्ट प्रावधान हो कि भंग की स्थिति में पीड़ित पक्षकार विनिर्दिष्ट निष्पादन का हकदार होगा। अधिनियम यह स्पष्ट करता है कि यदि संविदा के विनिर्दिष्ट प्रवर्तन की मांग करने के लिए विधिक आवश्यकताएं निर्धारित की जाती हैं, तो संविदा में विनिर्दिष्ट निष्पादन के लिए विनिर्दिष्ट अवधि के अभाव में भी अधिनियम में दिए गए अनुसार विनिर्दिष्ट निष्पादन को लागू किया जा सकता है। अधिनियम की धारा 23 से यह स्पष्ट है कि यहां तक कि जहां बिक्री के समझौते में भंग की स्थिति में केवल क्षति या परिसमाप्त क्षति के भुगतान का प्रावधान है तथा इसमें विनिर्दिष्ट निष्पादन के लिए कोई प्रावधान नहीं है, वहां भंग करने वाला पक्षकार यह तर्क नहीं दे सकता कि क्षति के भुगतान के लिए*

विनिर्दिष्ट प्रावधान को ध्यान में रखते हुये, तथा विनिर्दिष्ट निष्पादन के लिए प्रावधान के अभाव में न्यायालय विनिर्दिष्ट निष्पादन प्रदान नहीं कर सकता है। लेकिन जहां भंग की स्थिति में भुगतान की जाने वाली राशि का नाम देने वाला प्रावधान पक्षकार को विनिर्दिष्ट निष्पादन के बदले में धन का भुगतान करने का विकल्प देने के लिए अभिप्रेत है, वहां विनिर्दिष्ट निष्पादन अनुमेय नहीं हो सकता है।

29. हम निम्नलिखित उदाहरणों (पूरी नहीं) द्वारा स्थिति को स्पष्ट करने का प्रयास कर सकते हैं:

(क). बिक्री के समझौते में यह प्रावधान है कि विक्रेता द्वारा उल्लंघन की स्थिति में, क्रेता को बयाना राशि के बराबर राशि हर्जाने के रूप में प्राप्त होगी। समझौते में विनिर्दिष्ट पालन के बारे में कुछ नहीं कहा गया है। ऐसे मामले में, समझौते में यह संकेत दिया गया है कि राशि केवल संविदा के पालन को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से नामित की गई थी। भले ही संविदा में विनिर्दिष्ट पालन के लिए कोई प्रावधान न हो, लेकिन भंग स्थापित होने पर न्यायालय विक्रेता द्वारा विनिर्दिष्ट पालन का निर्देश दे सकता है। लेकिन न्यायालय के पास अधिनियम की धारा 21 के अनुसार हर्जाना देने का विकल्प है, यदि वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि यह विनिर्दिष्ट पालन देने के लिए उपयुक्त मामला नहीं है।

(ख). समझौते में यह प्रावधान है कि विक्रेता द्वारा बिक्री विलेख निष्पादित करने में विफल रहने की स्थिति में, क्रेता विनिर्दिष्ट पालन के लिए पात्र नहीं होगा, बल्कि केवल बयाना राशि की वापसी और/या परिसमाप्त क्षति के रूप में नामित राशि के भुगतान का हकदार होगा। चूंकि संविदा के विनिर्दिष्ट पालन को रोकने एवं उल्लंघन की स्थिति में केवल क्षति के लिए प्रावधान करने के पक्षकारों का इरादा स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया है, इसलिए न्यायालय विनिर्दिष्ट पालन प्रदान नहीं कर सकता है, लेकिन परिसमाप्त क्षति और बयाना राशि की वापसी का आदेश दे सकता है।

(ग). बिक्री के समझौते में यह प्रावधान है कि किसी भी पक्षकार द्वारा भंग की स्थिति में क्रेता विनिर्दिष्ट पालन का हकदार होगा, लेकिन उल्लंघन करने वाले पक्षकार के पास संविदा का पालन करने के बजाय पीड़ित पक्षकार को निर्धारित क्षतिपूर्ति के रूप में एक नामित राशि का भुगतान

करने का विकल्प होगा और ऐसे भुगतान पर, पीड़ित पक्षकार विनिर्दिष्ट पालन का हकदार नहीं होगा। ऐसे मामले में, क्रेता विनिर्दिष्ट पालन का हकदार नहीं होगा, क्योंकि संविदा की शर्तें व्यतिक्रम करने वाले पक्षकार को विनिर्दिष्ट पालन के बदले में पैसे का भुगतान करने का विकल्प देती हैं।"

65. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित पूर्वोक्त निर्णय के पठन से यह स्पष्ट है कि अधिनियम में शामिल विनिर्दिष्ट पालन से संबंधित कानून नागरिक विधि का एक अत्यंत महत्वपूर्ण पहलू है। इस अधिनियम में अन्य बातों के साथ-साथ संविदाओं के निष्पादन से संबंधित अधिकांश पहलुओं को शामिल किया गया है जिसमें व्यादेश की राहत भी शामिल है। विनिर्दिष्ट पालन पक्षकारों के बीच संविदात्मक दायित्वों को लागू करने के लिए न्यायालय द्वारा दी गई एक साम्यापूर्ण अनुतोष है। यह एक संविदा के उल्लंघन के लिए केवल नुकसान की मांग करने वाले दावे के विपरीत प्रदर्शन में एक उपाय है जहां संविदा की शर्तों को पूरा करने में विफलता के लिए राहत के रूप में आर्थिक मुआवजा दिया जाता है।

66. मामले के निर्विवाद तथ्यों पर ध्यान देना उचित होगा। वर्तमान वाद के माध्यम से, वादीगण प्रतिवादी के खिलाफ अन्य बातों के साथ-साथ विनिर्दिष्ट पालन तथा इस न्यायालय से प्रतिवादी को निदेश देने की मांग करते हैं कि वह वादीगण को वाद संपत्ति अर्थात् लगभग 1200 वर्ग गज की भूमि एवं उसकी संरचना, जिसकी सं. ए-9/29, वसंत विहार, नई दिल्ली है, हस्तांतरित/समनुदेशन/बेच दे, इसके अलावा, वादी ने मुआवजे के रूप में

20,79,049/- रुपये की राशि की मांग करते हुए एक वैकल्पिक प्रार्थना भी की है।

67. यहाँ पक्षकारों का यह स्वीकार्य मामला है कि स्वर्गीय श्री महाराजा सुरेन्द्र सिंह जी (प्रतिवादी के दिवंगत बड़े भाई) ने 5 नवंबर 1984 को अपनी अंतिम वसीयत एवं वसीयतनामा निष्पादित किया था, जिसे प्रदर्श अभि.-7 के रूप में चिह्नित किया गया है, जिसमें कुछ वसीयतों के अधीन, पूरी वाद संपत्ति प्रतिवादी को पूरी तरह से वसीयत की गई थी। उक्त वसीयत को मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय में प्रोबेट मामला सं. सि.वा. (मू.वा.) सं. 1/1998 में चुनौती दी गई थी। उक्त मामले को दिनांक 7 मई 2010 के निर्णय के माध्यम से प्रतिवादी के पक्ष में न्यायनिर्णित किया।

68. उक्त प्रोबेट मामले के अंतराल में, वादी एवं प्रतिवादी ने एक समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए, जिसे प्रदर्श अभि.-1 के रूप में चिह्नित किया गया है, जिसके तहत वादी ने वाद संपत्ति की सुरक्षा, संरक्षण एवं रखरखाव के लिए खर्च का भुगतान करने पर सहमति व्यक्त की थी। जिसके अनुसार, प्रतिवादी वादी द्वारा उक्त संपत्ति की सुरक्षा, संरक्षण एवं रखरखाव के लिए किए गए खर्चों को चुकाने में असमर्थ रहा था, तथा यह सहमति हुई कि प्रतिवादी वाद संपत्ति में वह अपने सभी हितों को सौंप देगा और/या बेच देगा और/या निपटान करेगा, जिसके लिए प्रतिवादी वर्ष 1984 की वसीयत के अनुसार प्रमुख लाभार्थी के रूप में वादी सं. 1 के पक्ष में हकदार है।

69. उक्त समझौता ज्ञापन के साथ, प्रतिवादी ने वादी सं. 2 के पक्ष में दिनांक 2 दिसंबर 1998 का एक सामान्य मुख्तारनामा भी निष्पादित किया, जिसे प्रदर्श अभि.-2 के रूप में चिह्नित किया गया है तथा दिनांक 2 दिसंबर 1998 का एक विशेष मुख्तारनामा, जिसे प्रदर्श अभि.-3 के रूप में चिह्नित किया गया है। यह भी ध्यान दिया जाता है कि वादी सं. 2 के पक्ष में मुख्तारनामा की शक्तियां, हालांकि, न तो पंजीकृत थीं और न ही स्टांपित थीं।

70. प्रतिवादी द्वारा इस न्यायालय के समक्ष यह तर्क दिया गया है कि उक्त मुख्तारनामा एवं समझौता ज्ञापन मई 2003 में समाप्त कर दिए गए हैं, तथा प्रतिवादी द्वारा उक्त प्रोबेट मामले में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय को इसकी सूचना दी गई थी।

71. इस न्यायालय का ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित किया जाता है कि वर्तमान वाद के लिए वाद हेतुक तभी उत्पन्न हुआ जब वादीगण को समझौता ज्ञापन के निरस्तीकरण का पता चला और इसलिए, वर्तमान वाद दायर किया गया। इसके अलावा, प्रतिवादी ने दिनांक 28 जून 2004 को समझौता ज्ञापन और मुख्तारनामा के निरस्तीकरण का एक विलेख निष्पादित किया, तथा उक्त निरस्तीकरण को इस न्यायालय के समक्ष चुनौती नहीं दी गई।

72. अभिलेख पर अभिवचनों एवं साक्ष्यों के आधार पर, अब विरचित मुद्दों पर चर्चा की जाएगी।

<u>मुद्दा सं. 1 व 4</u>

मुद्दा सं. 1 - क्या वादी संपत्ति सं. ए-9/29, वसंत विहार, नई दिल्ली के संबंध में अपने पक्ष में निष्पादित दस्तावेजों के विनिर्दिष्ट पालन का हकदार है? ओपीपी

मुद्दा सं. 4 - क्या वादी समझौते के अपने हिस्से का पालन करने के लिए तैयार एवं इच्छुक है? ओपीपी

73. उपर्युक्त मुद्दों पर एक साथ चर्चा की जाएगी क्योंकि दोनों ही मुद्दे प्रतिवादी की ओर से पालन की मांग करने में वादी के अधिकार एवं उनकी ओर से प्रदर्शन के संबंध में वादी की इच्छा से संबंधित हैं। स्पष्टतः, दोनों मुद्दे वादी के राहत मांगने के अवसर एवं अधिकार को निर्धारित करेंगे।

74. ऊपरोक्त मुद्दों पर चर्चा से पहले, प्रतिवादी द्वारा उठाई गई आपत्ति पर टिप्पणी करना महत्वपूर्ण है कि वादी के पक्ष में उनके द्वारा निष्पादित समझौता ज्ञापन एक वैध संविदा नहीं है। प्रतिवादी का यह तर्क इस न्यायालय द्वारा स्वीकार नहीं किया जाता है क्योंकि उक्त समझौते की शर्तों व नियमों से यह स्पष्ट है कि पक्षकार स्पष्ट एवं विधिक रूप से बाध्यकारी संबंध बनाने का उद्देश्य रखते थे, जिससे वे संविदा के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए बाध्य हो जाते हैं। पक्षकारों की ओर से स्पष्ट उद्देश्य है जो भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 10 के तहत उल्लिखित अनिवार्यताओं का उल्लंघन नहीं करता है।

75. इसके अलावा, प्रतिवादी ने वादी के इस तर्क पर आपत्ति जताई है कि वाद संपत्ति का पूरा हिस्सा ही इस वाद का विषय है। प्रतिवादी ने अपने लिखित कथन में कहा है कि वह संपत्ति के केवल 55% हिस्से का मालिक है एवं उसका पूर्ण मालिक नहीं है। प्रतिवादी के उक्त तर्क को स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि वर्ष 1984 की वसीयत के पठन से ही यह स्पष्ट है कि प्रतिवादी वाद संपत्ति का मालिक है तथा वाद संपत्ति से केवल बिक्री आय या किराये की आय की अनुसूची को ही विभिन्न लोगों के बीच विभाजित किया जाना है।

76. प्रतिवादी द्वारा उठाई गई अगली मौलिक आपत्ति यह है कि वादीगण के पक्ष में उनके द्वारा निष्पादित दस्तावेज वैध नहीं हैं क्योंकि वे अस्टांपित एवं अपंजीकृत हैं। इस संदर्भ में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***एस. कलादेवी बनाम वी.आर. सोमसुंदरम,*** **(2010) 5 एससीसी 401,** और ***आर. हेमलता बनाम कस्तूरी,*** **2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 381** के मामले में, यह कहते हुए विवाद को स्पष्ट किया है कि बिक्री के लिए एक अपंजीकृत समझौते को विनिर्दिष्ट पालन हेतु एक वाद में साक्ष्य के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। इसलिए, साम्या के सिद्धांत को लागू करते हुए, तत्काल समझौते को भी पक्षकारों के बीच निष्पादित एक वैध साधन के रूप में लिया जाता है।

77. इसके अलावा, समझौते के नियमों व शर्तों को पठन पर, पक्षकारों का उद्देश्य स्पष्ट है कि समझौता वाद संपत्ति की बिक्री से संबंधित है। प्रतिवादी द्वारा उसी के निष्पादन से इनकार नहीं किया गया है, हालांकि प्रतिवादी ने

समझौता ज्ञापन को निष्पादित करने के लिए वादीगण द्वारा प्रपीड़न के अभिवचन किये है।

78. अब, मुद्दों पर विचार करते हुए, वादीगण यह अभिवचन देकर विनिर्दिष्ट निष्पादन की मांग कर रहे हैं कि उन्होंने समझौता ज्ञापन की आवश्यक शर्तों का पालन किया है तथा वे इसके लिए तैयार एवं इच्छुक भी हैं, जिनका पालन समझौता ज्ञापन की तिथि से लेकर वर्तमान वाद के संस्थित होने की तिथि तक उनके द्वारा निरंतर किया जाना है।

79. इस संबंध में, अधिनियम की धारा 16(ग) के तहत विधिक स्थिति मुखर एवं स्पष्ट है। अधिनियम की धारा 16 में प्रावधान है कि किसी संविदा के विनिर्दिष्ट पालन को उस व्यक्ति के पक्ष में लागू नहीं किया जा सकता है जो इसके उल्लंघन हेतु मुआवज़ा प्राप्त करने का हकदार नहीं है। धारा 16(ग) के अनुसार, वादी की ओर से "तत्परता एवं इच्छा" विनिर्दिष्ट पालन के अनुदान की राहत प्राप्त करने के लिए एक शर्त है। इसमें यह भी प्रावधान है कि कोई न्यायालय ऐसे वादीगण को विशिष्ट प्रदर्शन की राहत नहीं दे सकता है जो यह साबित करने में विफल रहा है कि उसने समझौते के अपने हिस्से का पालन किया है या हमेशा से ही इसके लिए तैयार एवं इच्छुक रहा है।

80. उपर्युक्त मुद्दों पर न्यायनिर्णयन हेतु, अर्थात् क्या वादी विनिर्दिष्ट पालन की राहत के हकदार हैं, यह न्यायालय निम्नलिखित पर चर्चा करके इस पर चर्चा करना उचित समझता है:

क. वादीगण की तत्परता एवं इच्छा।

ख. प्रतिवादी की तत्परता एवं इच्छा।

ग. तीसरे पक्षकार के हितों का सृजन।

घ. कोई अन्य कारक, यदि कोई हो।

81. चर्चा के उपर्युक्त बिंदुओं पर निम्नलिखित विचार-विमर्श किया गया है।

<u>वादी की तत्परता एवं इच्छा</u>

82. वादी समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर करने के बाद से ही उसमें निर्धारित नियमों एवं शर्तों का पालन करने के लिए तैयार एवं इच्छुक था। वादी के आचरण से यह निस्संदेह स्पष्ट हो जाता है कि वादी ने समझौता ज्ञापन की शर्तों का पालन किया था तथा कभी भी अपने किसी दायित्व का उल्लंघन नहीं किया। वादपत्र एवं अभिलेख पर मौजूद साक्ष्यों को ध्यान से देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि वादी हमेशा संविदा के अपने हिस्से का पालन करने के लिए तैयार एवं इच्छुक रहा है। इस संबंध में, वादी सं. 2 (अभि.सा.-1) ने अपने साक्ष्य में स्पष्ट रूप से बयान दिया है एवं यह प्रतिवादी की जांच से भी स्पष्ट है।

83. निर्विवाद तथ्यों से यह स्पष्ट है कि प्रतिवादी द्वारा समझौता ज्ञापन एवं मुख्तारनामा पर विधिवत हस्ताक्षर किए गए थे। उक्त दस्तावेजों के अवलोकन से पता चलता है कि पक्षकारों ने एक वैध समझौता किया था जिसमें नियम

एवं शर्तें निर्धारित की गई थीं, जिसके अनुसार वे सहमति के अनुसार कुछ कर्तव्यों का पालन करने हेतु सहमत हुए थे।

84. यह सामान्य बात है कि विनिर्दिष्ट पालन की राहत सामान्य कानून का उपाय नहीं है, बल्कि अनिवार्य रूप से साम्या में है। इसलिए, अधिनियम के अनुसार, संविदा के विनिर्दिष्ट पालन हेतु विभिन्न कारकों एवं मापदंडों का प्रावधान करते हुए भी, यह उन परिदृश्यों के लिए भी प्रावधान करता है जहाँ संविदा विशिष्ट रूप से लागू करने योग्य नहीं हैं।

85. अधिनियम की धारा 16 के प्रावधान में उल्लिखित योजना के मात्र पठन एवं अधिनियम के उद्देश्य को समझने पर यह स्पष्ट है कि प्रावधान के अनुसार निर्धारित कोई भी प्रतिबंध इस वाद पर लागू नहीं होता है। इस स्थिति में, प्रावधान के दायरे पर चर्चा करना उचित है कि कब किसी विशेष संविदा का कोई पक्षकार न्यायालय के समक्ष संविदा को लागू करने का हकदार हो जाता है, जिससे विनिर्दिष्ट पालन की मांग की जाती है।

86. ***कट्टा सुजाता रेड्डी बनाम सिद्दामसेट्टी इंफ्रा प्रोजेक्ट्स (प्रा.) लिमिटेड,*** **(2023) 1 एससीसी 355** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने हाल ही में उन दायरे एवं सिद्धांतों को दोहराया है जिसका न्यायालय को विनिर्दष्ट पालन के लिए वाद में अधिकार के मुद्दे पर निर्णय लेते समय पालन करने की आवश्यकता है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि किसी संविदा के विनिर्दष्ट पालन की राहत केवल तभी दी जा सकती है जब ऐसे अनुतोष का

दावा करने वाला पक्ष संविदा के तहत अपने दायित्वों को पूरा करने के लिए अपनी तत्परता एवं इच्छा दिखाता है।

87. इसलिए, इस न्यायालय का विचार है कि वादी के हक का निर्णय करने हेतु, वादी की तत्परता एवं इच्छा का भी निर्णय करना आवश्यक है।

88. इस न्यायालय ने तत्परता एवं इच्छा का पता लगाने के उद्देश्य से विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 10 का संदर्भ दिया, जिसमें निम्नलिखित कहा गया है:

> *"किसी संविदा का विशिष्ट निष्पादन न्यायालय द्वारा धारा 11 की उपधारा (2), धारा 14 एवं धारा 16 में निहित प्रावधानों के अधीन लागू किया जाएगा।"*

89. विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 16(ग) में कहा गया है कि,

> *"संविदा का विनिर्दिष्ट पालन किसी व्यक्ति के पक्ष में लागू नहीं किया जा सकता है-*
> *(ग) [जो यह साबित करने में असफल रहता है] कि उसने संविदा की उन आवश्यक शर्तों का पालन किया है या करने के लिए हमेशा तैयार एवं इच्छुक रहा है, जिनका पालन उसके द्वारा किया जाना है, सिवाय उन शर्तों के जिनका पालन प्रतिवादी द्वारा रोका या माफ किया गया है।"*

90. वेबस्टर के तृतीय न्यू इंटरनेशनल डिक्शनरी के अनुसार, *"तैयार होना" का अर्थ है, "कुछ किए जाने या अनुभव किए जाने के लिए तैयार होना.... किसी कार्रवाई या घटना के लिए आवश्यक चीजों से सुसज्जित या आपूर्ति*

किया जाना..... मन या स्वभाव से तैयार होना ताकि इच्छुक हो और अनिच्छुक न हो: संकोची न हो: इच्छुक, तैयार।" "इच्छुक होना" *का अर्थ है, "मन में इच्छुक या अनुकूल स्थिति में होना"।*

91. ***सी.एल. जैन बनाम गोपी चंद,*** **एआईआर 1990 डेल 280** में यह आदेश दिया गया है कि संविदा को निष्पादित करने की तत्परता एवं इच्छा, संविदा की तिथि से लेकर सुनवाई के समय तक संविदा को निष्पादित करने हेतु उसकी ओर से "निरंतर तत्परता एवं इच्छा" होनी चाहिए।

92. ***गोमथिनायागम पिल्लई बनाम पलानीस्वामी नादर,*** **(1967) 1 एससीआर 227 के मामले में,** माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि एक विनिर्दिष्ट पालन वाद में, वादी को यह साबित करना आवश्यक है कि वह संविदा में प्रवेश करने की तिथि से लेकर वाद शुरू करने की तिथि तक संविदा के तहत उस पर बाध्य शर्तों को पूरा करने के लिए तैयार रहा है। इसी सिद्धांत को माननीय न्यायालय ने ***एन.पी. थिरुगनम बनाम डॉ. आर. जगन मोहन राव व अन्य,*** **(1995) 5 एससीसी 115** के निर्णय में भी दोहराया है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उक्त निर्णय में माना है कि संविदात्मक शर्तों के संबंध में दायित्वों एवं कर्तव्यों के अपने हिस्से को निभाने में वादी की तत्परता एवं इच्छा की सराहना करने के लिए, वादी को यह अभिवचन देना चाहिये एवं साबित करना चाहिए कि उसने संविदा की आवश्यक शर्तों को पूरा किया है प्रासंगिक पैराग्राफ निम्न पुन: प्रस्तुत है:

"5. वादी की ओर से निरंतर तत्परता एवं इच्छा, विनिर्दिष्ट पालन की राहत प्रदान करने हेतु एक पूर्व शर्त है। यह परिस्थिति महत्वपूर्ण एवं प्रासंगिक है तथा अनुतोष प्रदान करने या देने से इनकार करते समय न्यायालय द्वारा इस पर विचार किया जाना आवश्यक है। यदि वादी या तो यह कहने या साबित करने में विफल रहता है, तो उसे विफल होना ही चाहिए। यह तय करने के लिए कि वादी संविदा के अपने हिस्से को पूर्ण करने हेतु तैयार एवं इच्छुक है या नहीं, न्यायालय को वाद दायर करने से पहले और बाद में वादी के आचरण एवं अन्य परिस्थितियों को ध्यान में रखना चाहिए। प्रतिवादी को उसे जो प्रतिफल देना है, उसे अनिवार्य रूप से उपलब्ध साबित किया जाना चाहिए। निष्पादन की तिथि से लेकर डिक्री की तिथि तक उसे यह साबित करना होगा कि वह संविदा के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए तैयार है एवं हमेशा से ही इच्छुक रहा है। जैसा कि कहा गया है, संविदा के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए उसकी तत्परता एवं इच्छा के तथ्य को पक्ष के आचरण और उपस्थित परिस्थितियों के संदर्भ में तय किया जाना है। न्यायालय तथ्यों और परिस्थितियों से यह अनुमान लगा सकता है कि वादी संविदा के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए तैयार था और हमेशा से ही तैयार और इच्छुक था।"

93. इसके अलावा, ***एंग्लिग्लेस योहानन बनाम रामलता,*** **(2005) 7 एससीसी 534 में,** माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि संविदा के विनिर्दिष्ट पालन की प्रकृति में अनुतोष वादी को दी जानी चाहिए, यदि यह वादी के आचरण से स्पष्ट है। इसके अलावा, प्रतिवादी के आचरण पर भी विचार किया जाना चाहिए। अनुतोष का अनुदान केवल शिकायत, लिखित कथन या मुख्य जांच परीक्षक पर आधारित नहीं होना चाहिए। ***उमाबाई बनाम नीलकंठ धोंडीबा चव्हाण,*** **2019 एससीसी ऑनलाइन एससी 203** में भी "बेदाग आचरण" के उक्त सिद्धांत को बरकरार रखा गया था।

94. इस वाद को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय ने वादी की तत्परता एवं इच्छा का निर्णय करने हेतु निम्नलिखित दस्तावेजों एवं साक्ष्यों का हवाला दिया है। इसे निम्न पुन: प्रस्तुत किया गया है:

क. श्री शरद सांघी (अभि.सा.1) - वर्तमान वाद में वादी सं. 2 (प्रतिस्थापन से पहले) वे दिनांक 2 दिसंबर 1998 के समझौते के हस्ताक्षरकर्ता हैं, तथा दिनांक 2 दिसंबर 1998 के सामान्य मुख्तारनामा एवं विशेष मुख्तारनामा धारक हैं। उसने वादपत्र में अभिवचन के रूप में तथ्यों के बारे में अभिसाक्ष्य दिये है। इसके अलावा, अभि.सा. 1 से वादी सं. 1 की तुलन पत्र के संबंध में भी प्रतिपरीक्षा की गई, जिसमें समझौता ज्ञापन के अनुपालन में वादी द्वारा भुगतान की गई राशि तथा किए गए व्यय तथा तुलन पत्र में इसे कहां दर्शाया गया है, के संदर्भ में भी पूछताछ की गई।

ख. श्री एम.के. पंडित (अभि.सा. 2) - वह वादी सं. 1 कंपनी में एकाउंटेंट थे तथा उन्होंने दिनांक 2 दिसंबर 1998 के समझौते के अनुसरण में किए गए वित्तीय व्यय/भुगतान के बारे में अभिसाक्ष्य दिया है।

ग. प्रतिवादी (प्र.अभि.सा. 2/1 से अभि.सा. 530) की ओर से वादीगण द्वारा किए गए खर्चों का विवरण

घ. मेसर्स दादाचंदजी कंपनी द्वारा वादीगण को संबोधित दिनांक 27 अप्रैल 1999 का पत्र - माननीय सर्वोच्च न्यायालय (प्रति.सा.-1/अभि.1) के समक्ष स्थानांतरण याचिका के विकास के संबंध में

ङ. प्रतिवादी द्वारा वादी सं. 1 (प्रति.सा.-1/अभि.4) के मुख्य लेखाकार श्री बी.आर. नीमा को लिखा गया दिनांक 20 जुलाई 2001 का पत्र - खातों के समाधान तक भुगतान रोकने के लिए

च. प्रतिवादी द्वारा वादी सं. 1 (प्रति.सा.-1/अभि.5) के लेखा प्रबंधक श्री एम.के. पंडित को लिखा गया दिनांक 2 सितम्बर 2001 का पत्र - व्यय विवरण के संबंध में

छ. वादी के एक पदाधिकारी श्री रवीश बाफना द्वारा प्रतिवादी (प्रति.सा.-1/अभि.6) को लिखा गया दिनांक 3 नवंबर 2001 का पत्र - प्रोबेट मामले के विकास के संबंध में।

ज. दिनांक 11 मार्च 2003 को श्री रवीश बाफना, महाप्रबंधक द्वारा प्रतिवादी (प्रति.सा.-1/अभि.14) को लिखा गया पत्र - प्राप्तकर्ता की नियुक्ति के कारण सुरक्षा वापस लेने के संबंध में

झ. उत्तर दिनांक 17 फरवरी 2004 (प्रति.सा.-1/अभि.16), वादी सं. 2 द्वारा मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के समक्ष कारण बताओ नोटिस पर दायर उत्तर - अशोक नामक चौकीदार के मुद्दे के संबंध में

ञ. प्रति.सा.-1 की प्रतिपरीक्षा दिनांक 18 नवंबर 2017

95. इस न्यायालय का मानना है कि वादीगण ने कुछ हद तक समझौता ज्ञापन में उल्लिखित शर्तों के अनुसार अपने कर्तव्य एवं दायित्वों को निभाने

हेतु अपनी तत्परता एवं इच्छा दिखाई है। वादीगण के निम्नलिखित कार्य पालन करने की इच्छा पर आधारित हैं:

ट. वादीगण ने मार्च 2003 के प्रथम सप्ताह तक वाद संपत्ति की सुरक्षा हेतु तीन सुरक्षा गार्डों की नियुक्ति कर व्यवस्था कर ली थी।

ठ. वादी ने प्रतिवादी को दिसंबर 1998 से मई 2000 तक की अवधि हेतु परामर्श शुल्क के रूप में 15,000 रुपये प्रति माह का भुगतान किया, जो कुल मिलाकर 2,70,000 रुपये था।

ड. वादी ने प्रतिवादी को मासिक भत्ते के रूप में और समझौता ज्ञापन के तहत प्रतिफल के आंशिक भुगतान के रूप में प्रति माह 10,000 रुपये की राशि का भुगतान किया। उक्त भुगतान दिसंबर 1998 से मार्च 2001 तक किए गए थे।

ढ. वादीगण ने मुकदमेबाजी के खर्च के कारण यह व्यय वहन किया है।

96. इस न्यायालय ने ऊपर वर्णित वाद के अभिलेखों का अवलोकन करते हुए यह विचार व्यक्त किया है कि समझौता ज्ञापन के अनुसरण में वादी की ओर से किए गए कार्य, उनकी ओर से तत्परता एवं इच्छा को साबित करने हेतु पर्याप्त हैं। इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए गए प्रतिपरीक्षा एवं दस्तावेजों को समझौता ज्ञापन के अनुसरण में वादी द्वारा अपनी भूमिका निभाने हेतु किए गए कार्य माने जा सकते है।

<u>प्रतिवादी की तत्परता एवं इच्छा व तीसरे पक्ष के हितों का सृजन</u>

97. इस स्थिति में, इस वाद के लंबित रहने के दौरान हुए घटनाक्रमों पर विचार करना प्रासंगिक है। यह देखा गया है कि दिनांक 31 जनवरी 2005, 22 जनवरी 2008 एवं 27 अप्रैल 2015 के कई अंतरिम आदेशों के माध्यम से, इस न्यायालय ने प्रतिवादी को निर्देश दिया था कि वह रोक देकर वाद संपत्ति में किसी तीसरे पक्ष का हित न बनाए।

98. इस न्यायालय की पूर्ववर्ती न्यायपीठ द्वारा दिनांक 22 जनवरी 2008 को दिए गए आदेश के अनुसार उक्त रोक को पूर्णतः लागू कर दिया गया था। लेकिन प्रतिवादी ने इस न्यायालय के आदेश का घोर उल्लंघन करते हुए पहले ही श्री आर.सी. अग्रवाल नामक व्यक्ति को 4.50 करोड़ रुपए में संपत्ति बेच दी है, जो इस न्यायालय में लंबित अंतर.आ. सं. 820/2015 के अंतरिम आवेदन में प्रतिवादी भी है।

99. यह भी पता चला है कि दिनांक 4 फरवरी 2011 को श्री आर.सी. अग्रवाल ने वाद संपत्ति पर कब्जा कर लिया है। इसके अलावा, श्री आर.सी. अग्रवाल के पक्ष में प्रतिवादी द्वारा दिनांक 5 अप्रैल 2010 को एक बिक्री विलेख भी निष्पादित की गयी थी। प्रतिवादी को उक्त मूल बिक्री विलेख का पूर्ण एवं अंतिम विक्रय मूल्य प्राप्त हो चुका है जिसे दिनांक 30 अगस्त 2012 के आदेश के माध्यम से इस न्यायालय की अभिरक्षा में रखा गया है।

100. उपर्युक्त निर्णयों को ध्यान में रखते हुये, यह स्पष्ट है कि न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण वर्तमान वाद पर भी लागू होता है। वर्तमान वाद में

समझौता ज्ञापन वर्ष 1998 में निष्पादित किया गया था। तब से, लगभग 25 वर्ष बीत चुके हैं। संविदा के निष्पादन में पक्षकारों को काफी कठिनाई होगी। यह इस बात को ध्यान में रखते हुए कहा जा रहा है कि तीसरे पक्ष के हित इस हद तक बनाए गए हैं कि उस संविदा को रद्द करने से कठिनाइयों में वृद्धि होगी, जिसके लिए अनुचित मुकदमेबाजी की आवश्यकता होगी।

101. अन्यथा भी, अधिनियम की धारा 12 के प्रावधानों के अनुसार, सामान्य नियम यह है कि न्यायालय को संविदा के किसी भाग के विनिर्दिष्ट पालन का निर्देश नहीं देना चाहिए, जब संविदा "पूर्णतः या आंशिक रूप से निष्पादन के अयोग्य" हो जाता है। संविदा के भाग के विनिर्दिष्ट पालन का निर्देश केवल तभी दिया जा सकता है, जब जिस भाग को निष्पादित नहीं किया जाता है, उसका मूल्य पूरे भाग का एक छोटा हिस्सा होता है। वर्तमान मामले में, जिस भाग को निष्पादित नहीं किया जाना है, उसका मूल्य पूरे घर का एक बड़ा हिस्सा है, इसलिए, इस मामले की परिस्थितियों के तहत, यह न्यायालय अनुरोध के अनुसार डिक्री पारित करना उचित नहीं समझता है, जिससे समझौता ज्ञापन के निष्पादन का निर्देश दिया जा सके।

102. तथ्यों और परिस्थितियों की उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुये भले ही यह स्वीकार कर लिया जाए कि वादी संविदा के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए तैयार एवं इच्छुक थे, इस तथ्य को देखते हुए कि काफी समय बीत चुका है, संपत्ति का वह हिस्सा जिसके खिलाफ विनिर्दिष्ट पालन की मांग की

गई है, उसे नहीं दिया जा सकता है। इस संबंध में विधि तय है। संविदा के लिए दोनों पक्षकारों की तत्परता एवं इच्छा निरंतर होनी चाहिए तथा दोनों पक्षकारों में से किसी की ओर से उक्त आचरण में कोई अंतराल नहीं हो सकता है। वर्तमान वाद में, प्रतिवादी के आचरण से यह स्पष्ट है कि उसकी तत्परता एवं इच्छा में कोई निरंतरता नहीं है, जो वाद संपत्ति के संबंध में हुई घटनाओं से भी समर्थित है।

103. वैसे तो वादी का आचरण हमेशा से बेदाग रहा है, लेकिन प्रतिवादी के लिए ऐसा नहीं कहा जा सकता है। मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के समक्ष दिए गए अपने बयान के बाद से वादी का आचरण स्पष्ट रूप से समझौता ज्ञापन के तहत दायित्वों के अपने हिस्से के पालन के प्रति उसकी अस्वीकृति को दर्शाता रहा है। इसके अलावा, प्रतिवादी ने दिनांक 28 अप्रैल 2004 को मुख्तारनामा विलेख को निरस्त कर दिया, जिससे विशेष मुख्तारनामा एवं सामान्य मुख्तारनामा निरस्त हो गया। इसके अलावा, प्रतिवादी ने उक्त निरस्तीकरण के अनुसरण में दिनांक 1 जुलाई 2004 को अंग्रेजी दैनिक 'द हिंदू' में एक सार्वजनिक नोटिस भी प्रकाशित किया तथा वादी को विधिक नोटिस भी भेजा जिसमें दोहराया गया कि उक्त दस्तावेज निरस्त हैं।

104. प्रतिवादी के आचरण से यह भी स्पष्ट है कि वाद संपत्ति पर रोक लगाए जाने के बाद भी, प्रतिवादी ने अभी भी इस न्यायालय के घोर उल्लंघन में तीसरे पक्षकार के हितों की रूचि बढ़ाई थी।

<u>कोई अन्य कारक, यदि कोई हो</u>

105. यह स्थापित विधि है कि न्यायालयों द्वारा विनिर्दिष्ट पालन प्रदान नहीं किया जाता है, क्योंकि विनिर्दिष्ट पालन प्रदान किए जाने की स्थिति में विपरीत पक्षकार को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है।

106. इसके अलावा, अचल संपत्ति से संबंधित मामलों में इस तथ्य के बावजूद कि संविदा की शर्तों के अनुसार समय महत्वपूर्ण है या नहीं, न्यायालय यह अनुमान लगा सकता है कि इसे उचित समय में निष्पादित किया जाना है। समय संविदा का सार नहीं है, अचल संपत्ति के मामले में जब कीमतें एवं मूल्य स्थिर थे तथा मुद्रास्फीति अज्ञात थी, हालांकि, वर्तमान दिनों में जहां संपत्ति की कीमतें कई गुना बढ़ जाती हैं, तब कारक एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

107. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***सरदामणि कंदप्पन बनाम एस राजलक्ष्मी*** **[(2011) 12 एससीसी 18]** के मामले का हवाला देते हुए ***नंजप्पन बनाम रामासामी,*** **(2015) 14 एससीसी 341** के निर्णय में कहा कि हालांकि विनिर्दिष्ट पालन के लिए डिक्री विवेकाधीन है, फिर भी न्यायालय केवल इसलिए ऐसे अनुतोष देने हेतु बाध्य नहीं है क्योंकि ऐसा करना वैध है। विनिर्दिष्ट पालन की डिक्री देने का अधिकारिता न्यायालय का विवेक है तथा यह प्रत्येक मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों पर निर्भर करता है। न्यायालय प्रत्येक मामले की परिस्थितियों, पक्षकारों के आचरण, बिक्री समझौते में वर्णित बातों एवं संविदा के बाहर की परिस्थितियों को भी ध्यान में रखेगा। इसके अलावा, माननीय

सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि न्यायालय को ऐसे अनुतोष देने/इनकार करने से पहले परिस्थितियों, पक्षकारों के आचरण एवं संविदा के तहत उनके संबंधित हितों की समग्रता को देखना होगा। ***नंजप्पन (पूर्वोक्त)*** के प्रासंगिक पैराग्राफ यहां पुन: प्रस्तुत किए गए हैं:

> *"**11.** विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 20 के तहत, संविदा के विनिर्दिष्ट पालन का अनुदान विवेकाधीन है। यद्यपि विनिर्दिष्ट पालन के लिए डिक्री विवेकाधीन है, फिर भी न्यायालय केवल इसलिए ऐसे अनुतोष देने हेतु बाध्य नहीं है क्योंकि ऐसा करना वैध है। लेकिन न्यायालय का विवेक मनमाना नहीं है, बल्कि ठोस एवं उचित है, विधि के न्यायिक सिद्धांतों द्वारा निर्देशित है तथा न्यायालय द्वारा सुधार योग्य है एवं अधिनियम की धारा 20 में परिकल्पित विधि द्वारा स्थापित सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए इसका उचित रूप से प्रयोग किया जाना चाहिए। विनिर्दिष्ट पालन का निर्णय देने का अधिकार न्यायालय का विवेकाधिकार है तथा यह प्रत्येक मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों पर निर्भर करता है। न्यायालय प्रत्येक मामले की परिस्थितियों, पक्षकारों के आचरण, बिक्री करार में वर्णित बातों एवं संविदा के बाहर की परिस्थितियों को ध्यान में रखेगा।*
>
> ***12.** सरदार सिंह बनाम कृष्णा देवी [(1994) 4 एससीसी 18] में, इस न्यायालय ने टिप्पणी की थी कि न्यायालय को ऐसे अनुतोष प्रदान करते/देने से इंकार करते समय परिस्थितियों की समग्रता, पक्षकारों के आचरण एवं संविदा के तहत संबंधित हितों को देखना होता है।*
>
> ***13.** पहला बिक्री करार दिनांक 30-9-1987 को लगभग सत्ताईस साल पहले निष्पादित किया गया था। संपत्ति कोयंबटूर शहर में स्थित है और इन वर्षों में, कोयंबटूर शहर में संपत्ति का मूल्य काफी बढ़ गया होगा। सरदामणि कंदप्पन बनाम एस राजलक्ष्मी [(2011) 12 एससीसी 18 : (2012) 2 एससीसी (सिविल) 104] में, इस न्यायालय ने माना है कि शहरी क्षेत्रों में संपत्ति का मूल्य बहुत तेज़ी से बढ़ता है तथा लंबे समय के बीत जाने के बाद विनिर्दिष्ट पालन प्रदान करना न्यायसंगत नहीं होगा। वर्तमान मामले में,*

पहला करार दिनांक 30-9-1987 को अर्थात् सत्ताईस साल पहले निष्पादित किया गया था। समय बीतने एवं संपत्ति के मूल्य में वृद्धि को देखते हुए, निष्पादन की विनिर्दिष्ट अनुतोष प्रदान करने से प्रतिवादी-वादी को अनुचित लाभ मिलेगा, जबकि संविदा के निष्पादन में अपीलार्थी-प्रतिवादी एवं उसके परिवार के सदस्यों को काफी कठिनाई होगी।"

108. उपर्युक्त के आलोक में, न्यायालयों ने लगातार माना है कि विनिर्दिष्ट पालन प्रदान करने के विवेक का प्रयोग करने के लिए साम्या को संतुलित करने की आवश्यकता है। न्यायालय को ऐसे विनिर्दिष्ट पालन प्रदान करने के संभावित परिणामों पर विचार करना होगा।

109. वर्तमान परिदृश्य में, जैसा कि ऊपर देखा गया है, दिनांक 5 अप्रैल 2010 को वाद संपत्ति पहले ही तीसरे पक्ष अर्थात् श्री आर.सी. अग्रवाल को बेची जा चुकी है। इसके अलावा, संपत्ति का वर्तमान मूल्यांकन तेजी से बढ़कर 60 करोड़ रुपये हो गया है। अभि.सा.-1 की प्रतिपरीक्षा में उल्लिखित वाद संपत्ति के मूल्य में उक्त वृद्धि, इस न्यायालय के समक्ष विवाद में पक्षकारों द्वारा निर्धारित मूल्य अर्थात् 2.5 करोड़ रुपये की तुलना में बहुत अधिक वृद्धि है। यह न्यायालय वादी द्वारा प्रतिवादी को 2.50 करोड़ रुपये का भुगतान करके विनिर्दिष्ट पालन प्रदान नहीं कर सकता क्योंकि संपत्ति की कीमत में काफी वृद्धि हुई है।

110. इस न्यायालय का मानना है कि साम्या के आधार के अलावा, विवादित संपत्ति की कीमत में भारी वृद्धि विनिर्दिष्ट पालन प्रदान न करने का एक

योगदान कारक है। वाद शुरू होने के वर्ष अर्थात् वर्ष 2004 में संपत्ति की कीमत में काफी वृद्धि हुई है एवं यह 60 करोड़ रुपये हो गई है।

111. अभिलेख पर जो सामग्री रखी गई है, उसको ध्यान में रखते हुये यह संकेत मिलता है कि जिस संपत्ति के खिलाफ वादी विनिर्दिष्ट पालन की मांग कर रहा है, उसमें तीसरे पक्षकार का हित सृजित किया गया है। ऐसी परिस्थिति में विनिर्दिष्ट पालन डिक्री प्रदान करना एवं उसे लागू करना अनुचित है। उक्त अवलोकन न्याय एवं साम्या के हितों को संतुलित करने के लिए किया गया है। इसलिए, विनिर्दिष्ट पालन के लिए डिक्री प्रदान नहीं की जानी चाहिए।

112. इस न्यायालय का यह भी मानना है कि यदि वादी को विनिर्दिष्ट पालन प्रदान किया जाता है, तो प्रतिवादी के साथ-साथ विवादित संपत्ति खरीदने वाले तीसरे पक्षकार को भी अनुचित कठिनाई होगी। मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय का मानना है कि वादी वर्ष 2004 में विनिर्दिष्ट पालन के लिए दावा किए गए अनुतोष के हकदार हो सकते हैं। हालाँकि, वर्तमान में, वादी को इस न्यायालय द्वारा विनिर्दिष्ट पालन की राहत नहीं दी जा सकती है, क्योंकि प्रतिवादी ने उसके और वादी के बीच किए गए समझौता ज्ञापन की शर्तों का पालन नहीं किया है, तीसरे पक्षकार के हितों का निर्माण और अन्य कारक शामिल हैं, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है।

113. उपरोक्त के मद्देनजर, इसलिए यह माना जाता है कि वादी संविदा के विनिर्दिष्ट पालन के डिक्री के हकदार नहीं हैं।

114. इस प्रकार, मुद्दा सं. 1 व 4 तदनुसार तय किए जाते हैं।

<u>मुद्दा सं. 2 एवं 3</u>

मुद्दा सं. 2 - यदि वादी विनिर्दिष्ट पालन के लिए हकदार नहीं है, तो क्या वादी 20,79,049/- रुपए की वसूली के लिए धन डिक्री के लिए हकदार है? ओपीपी

मुद्दा सं. 3 - क्या वादी ब्याज पाने का हकदार है? यदि हाँ, तो कितनी राशि पर, किस दर पर एवं कितनी अवधि के लिए? ओपीपी

115. उपर्युक्त मुद्दों पर इस न्यायालय द्वारा एक साथ विचार किया जाएगा, क्योंकि दोनों मुद्दे इस बात से संबंधित हैं कि क्या वादी मुआवजे के रूप में धन डिक्री के हकदार हैं या नहीं और यदि वादीगण हकदार माने जाते हैं, तो यह न्यायालय उस ब्याज की राशि, दर और अवधि के पहलू पर गहराई से विचार करेगा जिसके लिए प्रतिवादी को ऐसा ब्याज चुकाना होगा।

116. मामले के तथ्यों के अनुसार, वादीगण ने वैकल्पिक रूप से प्रार्थना (ख) की मांग की है कि यदि न्यायालय यह निर्णय देता है कि वादीगण को विनिर्दिष्ट पालन डिक्री प्रदान नहीं की जा सकती है, तो वादीगण द्वारा किए गए सभी व्ययों की प्रतिपूर्ति की जाए, जो कि 20,79,049/- रुपये है, साथ ही 18% प्रति वर्ष की दर से ब्याज भी। प्रार्थना को नीचे इस प्रकार से पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"ख) यदि यह माननीय न्यायालय विनिर्दिष्ट पालन के लिए डिक्री प्रदान न करना चाहे तो वादी के पक्ष में तथा प्रतिवादी के विरुद्ध 20,79,049 रुपए की राशि के साथ वाद की तिथि से लेकर वास्तविक वसूली की तिथि तक 18% प्रति वर्ष की दर से ब्याज सहित धनराशि के भुगतान के लिए डिक्री पारित करे; तथा"

117. उपर्युक्त मुद्दों को निम्नलिखित उप-मुद्दों में उप-विभाजित किया गया है:

(i) क्या इस न्यायालय द्वारा विनिर्दिष्ट पालन के बदले मुआवजा दिया जा सकता है?

(ii) यदि ऐसा मुआवजा दिया जा सकता है, तो प्रतिवादी द्वारा वादी को देय मुआवजे की मात्रा क्या होगी?

118. उप-मुद्दे का विज्ञापन देना (i) - *क्या इस न्यायालय द्वारा विनिर्दिष्ट पालन के बदले मुआवजा दिया जा सकता है?*

119. प्रारंभ में, अधिनियम के 2018 संशोधन की भावी प्रयोज्यता के मुद्दे से निपटना उचित है। हाल ही में, ***कट्टा सुजाता रेड्डी बनाम सिद्धमसेट्टी इंफ्रा प्रोजेक्ट्स (प्रा.) लिमिटेड,*** **2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1079,** माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि अधिनियम में 2018 संशोधन प्रकृति में भावी है तथा इसलिए, इसे उन लेनदेन पर लागू नहीं किया जा सकता है जो इसके लागू होने से पहले हुए थे। आगे यह माना गया कि संशोधन केवल एक प्रक्रियात्मक अधिनियमन नहीं है; बल्कि यह प्रकृति में वास्तविक है, तथा इसलिए, इसकी कोई पूर्वव्यापी प्रयोज्यता नहीं होगी। चूंकि तत्काल वाद में वर्ष

1998 से 2004 के बीच वर्ष में हुए लेनदेन के संबंध में मुद्दे शामिल हैं, इसलिए अधिनियम का 2018 संशोधन तत्काल वाद पर लागू नहीं होता है।

120. अधिनियम की धारा 20 में यह प्रावधान है कि विनिर्दिष्ट पालन की डिक्री प्रदान करना न्यायालय का विवेकाधीन है। इस तरह के विवेक का प्रयोग न्यायालय द्वारा मामले के विनिर्दिष्ट तथ्यों एवं न्यायिक सिद्धांतों के अनुसार किया जाना चाहिए। अधिनियम की धारा 20 के असंशोधित प्रावधान को संदर्भ के लिए नीचे दोहराया गया है:

> *"20. विनिर्दिष्ट पालन को डिक्री करने के बारे में विवेकाधिकार --(1) विनिर्दिष्ट पालन को डिक्री करने की अधिकारिता विवेकाधीन है, और न्यायालय ऐसे अनुतोष देने के लिए केवल इसलिए बाध्य नहीं है क्योंकि ऐसा करना वैध है; लेकिन न्यायालय का विवेकाधिकार मनमाना नहीं है, बल्कि ठोस एवं उचित है, न्यायिक सिद्धांतों द्वारा निर्देशित है और अपीलीय न्यायालय द्वारा सुधार करने में सक्षम है।*
>
> *(2) निम्नलिखित मामले हैं जिनमें न्यायालय उचित रूप से विवेक का प्रयोग कर सकता है जो विनिर्दिष्ट पालन को डिक्री नहीं करता है-*
>
> (क) *जहां संविदा की शर्तें या संविदा करते समय पक्षकारों का आचरण या अन्य परिस्थितियां जिनके अधीन संविदा किया गया था, ऐसी हैं कि संविदा, यद्यपि अमान्य नहीं है, वादी को प्रतिवादी पर अनुचित लाभ देता है; या*
>
> (ख) *जहां संविदा के पालन से प्रतिवादी को कुछ कठिनाई होगी जिसका उसने पूर्वानुमान नहीं किया था, जबकि उसके पालन न किये जाने से वादी को ऐसी कोई कठिनाई नहीं होगी; या*
>
> (ग) *जहां प्रतिवादी ने उन परिस्थितियों में संविदा में प्रवेश किया, जो संविदा को अमान्य नहीं बनाते हैं, विनिर्दिष्ट पालन को लागू करने हेतु इसे असमान बनाता है।*

स्पष्टीकरण 1.-- केवल प्रतिफल की अपर्याप्तता, या केवल यह तथ्य कि संविदा प्रतिवादी के लिए बोझिल है या अपनी प्रकृति में अप्रयासपूर्ण है, खंड (क) के अर्थ में अनुचित लाभ या खंड (ख) के अर्थ में कठिनाई नहीं माना जाएगा।

स्पष्टीकरण 2.-- यह प्रश्न कि क्या किसी संविदा के पालन से प्रतिवादी को खंड (ख) के अर्थ में कठिनाई होगी, उन मामलों को छोड़कर, जहां कठिनाई संविदा के पश्चात् वादी के किसी कार्य के परिणामस्वरूप हुई है, संविदा के समय विद्यमान परिस्थितियों के संदर्भ में अवधारित किया जाएगा।

(3) न्यायालय किसी भी मामले में विनिर्दिष्ट पालन को डिक्री करने हेतु विवेकाधिकार का उचित प्रयोग कर सकती है जहां वादी ने विनिर्दिष्ट पालन में सक्षम संविदा के परिणामस्वरूप पर्याप्त कार्य किए हैं या नुकसान उठाना पड़ा है।

(4) न्यायालय किसी संविदा के किसी पक्षकार विनिर्दिष्ट पालन को केवल इस आधार पर मना नहीं करेगा कि संविदा दूसरे पक्षकार के कहने पर प्रवर्तनीय नहीं है"

121. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***जयकांथम बनाम अभयकुमार;*** **(2017) 5 एससीसी 178** के निर्णय में अधिनियम की धारा 20 को नियंत्रित करने वाले सिद्धांत को प्रतिपादित किया है, तथा प्रासंगिक प्रावधान को निम्न पुन: प्रस्तुत किया गया है**;**

"7. वर्तमान मामले में विनिर्दिष्ट पालन का आदेश दिया जाना चाहिए या नहीं, इसका मूल्यांकन करते समय, विधि के मूल सिद्धांतों को ध्यान में रखना आवश्यक होगा। न्यायालय केवल इसलिए विनिर्दिष्ट पालन की राहत देने के लिए बाध्य नहीं है क्योंकि ऐसा करना वैध है। विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 20(1) इंगित करती है कि विनिर्दिष्ट पालन का आदेश देने का अधिकार विवेकाधीन है। फिर भी, न्यायालय का विवेक मनमाना नहीं है, बल्कि "ठोस एवं उचित" है, जिसे "न्यायिक सिद्धांतों द्वारा निर्देशित" होना चाहिए। विवेक का प्रयोग अपीलीय न्यायालयों के

पदानुक्रम में अपील न्यायालय द्वारा ठीक किया जा सकता है। धारा 20 की उपधारा (2) में उन मामलों का प्रावधान है, जहां न्यायालय विनिर्दिष्ट पालन न देने हेतु अपने विवेक का प्रयोग कर सकता है। धारा 20 की उपधारा (2) निम्नलिखित शब्दों में है:

"**20. (2)** *निम्नलिखित मामले हैं जिनमें न्यायालय विनिर्दिष्ट पालन को डिक्री नहीं करने हेतु विवेक का उचित प्रयोग कर सकती है-*

(क) जहां संविदा की शर्तें या संविदा करते समय पक्षकारों का आचरण या अन्य परिस्थितियां जिनके अधीन संविदा की गई थी, ऐसी हैं कि संविदा, यद्यपि अमान्य नहीं है, तथापि वादी को प्रतिवादी पर अनुचित लाभ देती है; या

(ख) जहां संविदा के पालन से प्रतिवादी पर कुछ कठिनाई आएगी जिसका उसने पूर्वानुमान नहीं किया था, जबकि उसका पालन न किये जाने से वादी पर ऐसी कोई कठिनाई नहीं आएगी;

(*ग*) *जहां प्रतिवादी ने उन परिस्थितियों में संविदा में प्रवेश किया, जो संविदा को अमान्य नहीं बनाते हैं, विनिर्दिष्ट पालन को लागू करने हेतु इसे अन्यायपूर्ण बनाता है*"

8. *हालाँकि, स्पष्टीकरण 1 में यह निर्धारित किया गया है कि प्रतिफल की अपर्याप्तता या मात्र यह तथ्य कि संविदा प्रतिवादी के लिए बोझिल है या अपनी प्रकृति में अदूरदर्शी है, खंड (क) के अर्थ में अनुचित लाभ या खंड (ख) के अर्थ में कठिनाई का गठन नहीं करेगा। इसके अलावा, स्पष्टीकरण 2 में यह आवश्यक है कि इस मुद्दे पर कि क्या संविदा के पालन में प्रतिवादी पर कठिनाई शामिल है, संविदा के समय मौजूद परिस्थितियों के संदर्भ में यह निर्धारित किया जाना चाहिए, सिवाय इसके कि जहां कठिनाई संविदा के बाद वादी के किसी कार्य से हुई हो।*

9. *इस विषय पर उदाहरण नीचे दिया गया है:*

9.1. *परकुन्नन वीटिल जोसेफ का बेटा मैथ्यू बनाम नेदुम्बरा कुरुविला का बेटा [परकुन्नन वीटिल जोसेफ का बेटा मैथ्यू बनाम नेदुम्बरा कुरुविला का बेटा, 1987 पूरक एससीसी 340:*

एआईआर 1987 एससी 2328] में, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि: (एससीसी पृष्ठ 345, पैरा 14)

> "14. *विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 20 विनिर्दिष्ट पालन के बारे में न्यायालयों के न्यायिक विवेकाधिकार को सुरक्षित रखती है। न्यायालय को मामले के सभी तथ्यों एवं परिस्थितियों पर सावधानीपूर्वक विचार करना चाहिए। न्यायालय केवल इसलिए विनिर्दिष्ट पालन प्रदान करने के लिए बाध्य नहीं है क्योंकि ऐसा करना वैध है। मुकदमे के पीछे का उद्देश्य भी न्यायिक निर्णय में शामिल होना चाहिए। न्यायालय को यह देखने हेतु सावधानी बरतनी चाहिए कि इसका उपयोग वादी को अनुचित लाभ पहुंचाने हेतु उत्पीड़न के साधन के रूप में न किया जाए।"*

9.2. *सरदार सिंह बनाम कृष्णा देवी [सरदार सिंह बनाम कृष्णा देवी, (1994) 4 एससीसी 18] में इस न्यायालय द्वारा भी इसी प्रकार का दृष्टिकोण अपनाया गया था: (एससीसी पृष्ठ 26, पैरा 14)*

> "14. ... *विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 20(1) में प्रावधान है कि विनिर्दिष्ट पालन का आदेश देने की अधिकारिता विवेकाधीन है, तथा न्यायालय केवल इसलिए ऐसा अनुतोष देने हेतु बाध्य नहीं है, क्योंकि ऐसा करना वैध है; लेकिन न्यायालय का विवेक मनमाना नहीं है, बल्कि ठोस एवं उचित है, न्यायिक सिद्धांतों द्वारा निर्देशित है तथा अपील न्यायालय द्वारा सुधार योग्य है। विनिर्दिष्ट पालन का अनुतोष देना विवेकाधीन है। धारा 20 में निर्दिष्ट परिस्थितियाँ केवल उदाहरणात्मक हैं तथा संपूर्ण नहीं हैं। न्यायालय प्रत्येक मामले में परिस्थितियों, पक्षकारों के आचरण*

एवं संविदा के तहत संबंधित हितों को ध्यान में रखेगा।"

9.3. *के. नरेन्द्र बनाम रिवेरा अपार्टमेंट्स (प्रा) लिमिटेड [के. नरेन्द्र बनाम रिवेरा अपार्टमेंट्स (प्रा) लिमिटेड, (1999) 5 एससीसी 77] में स्थिति को दोहराते हुए, इस न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया: (एससीसी पृष्ठ 91, पैरा 29)*

"29. ... *संविदा का पालन जिसमें प्रतिवादी पर कुछ कठिनाई शामिल है, जिसे उसने पूर्वानुमानित नहीं किया था, जबकि पालन न करने में वादी पर ऐसी कोई कठिनाई शामिल नहीं है, यह उन परिस्थितियों में से एक है, जिसमें न्यायालय विनिर्दिष्ट पालन का आदेश न देने हेतु उचित रूप से विवेकाधिकार का प्रयोग कर सकता है। इस प्रकार भारत में तुलनात्मक कठिनाई के सिद्धांत को वैधानिक रूप से मान्यता दी गई है। हालांकि, मात्र प्रतिफल की अपर्याप्तता या मात्र यह तथ्य कि संविदा प्रतिवादी के लिए बोझिल है या अपनी प्रकृति में सुधारात्मक है, वादी को प्रतिवादी पर अनुचित लाभ या प्रतिवादी पर अप्रत्याशित कठिनाई का गठन नहीं करेगा। धारा 20 में अंतर्निहित सिद्धांत को इस न्यायालय ने लौर्ड मारी डेविड बनाम लुईस चिन्नाया अरोगियास्वामी [लौर्ड मारी डेविड बनाम लुईस चिन्नाया अरोगियास्वामी, (1996) 5 एससीसी 589] में यह कहकर सारांशित किया है कि विनिर्दिष्ट पालन का आदेश न्यायालय के विवेकाधिकार पर है विवेकाधिकार का प्रयोग विधि के ठोस सिद्धांतों के आधार पर किया जाना चाहिए, जिन्हें अपीलीय न्यायालय द्वारा सुधारा जा सके।*

9.4. *इन सिद्धांतों का पालन इस न्यायालय ने ए.सी. अरुलप्पन बनाम अहल्या नाइक [ए.सी. अरुलप्पन बनाम अहल्या नाइक, (2001) 6 एससीसी 600] में निम्नलिखित टिप्पणियों के साथ किया था: (एससीसी पृ. 604 व पृ. 606, पैरा 7 एवं 15)*

> "7. *विनिर्दिष्ट अनुतोष देने की अधिकारिता विवेकाधीन है तथा न्यायालय यह तय करने हेतु विभिन्न परिस्थितियों पर विचार कर सकता है कि ऐसी राहत दी जानी है या नहीं। केवल इसलिए कि विनिर्दिष्ट अनुतोष देना वैध है, न्यायालय को विनिर्दिष्ट अनुतोष के लिए आदेश देने की आवश्यकता नहीं है; लेकिन इस विवेकाधिकार का प्रयोग मनमाने या अनुचित तरीके से नहीं किया जाना चाहिए। विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 20(2) में कुछ परिस्थितियों का उल्लेख किया गया है कि किन परिस्थितियों में न्यायालय ऐसे विवेकाधिकार का प्रयोग करेगा। यदि संविदा की शर्तों के तहत वादी को प्रतिवादी पर अनुचित लाभ मिलता है, तो न्यायालय वादी के पक्ष में अपने विवेकाधिकार का प्रयोग नहीं कर सकता है। इसी तरह, यदि प्रतिवादी को अनुचित कठिनाई का सामना करना पड़ता है, जिसका उसने करार के समय अनुमान नहीं लगाया था, तो भी विनिर्दिष्ट अनुतोष नहीं दी जा सकती है। यदि विनिर्दिष्ट अनुतोष देना अनुचित है, तो भी न्यायालय वादी को डिक्री देने से परहेज करेगा।*

> ***

> 15. *विनिर्दिष्ट पालन प्रदान करना एक न्यायसंगत अनुतोष है, हालांकि अब यह विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 के वैधानिक प्रावधानों द्वारा शासित*

है। इन न्यायसंगत सिद्धांतों को अधिनियम की धारा 20 में अच्छी तरह से शामिल किया गया है। विनिर्दिष्ट पालन हेतु डिक्री प्रदान करते समय, ये हितकारी दिशा-निर्देश न्यायालय के चित्त में सबसे पहले होने चाहिए। ..."

9.5. *इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने निर्मला आनंद बनाम एडवेंट कॉरपोरेशन (प्रा) लिमिटेड [निर्मला आनंद बनाम एडवेंट कॉरपोरेशन (प्रा) लिमिटेड, (2002) 8 एससीसी 146] की स्थिति पर विचार किया, तथा इस प्रकार अभिनिर्धारित किया: (एससीसी पृष्ठ 150, पैरा 6)*

"6. *यह सच है कि विनिर्दिष्ट पालन की डिक्री देना न्यायालय के विवेकाधिकार पर निर्भर करता है तथा यह भी सुव्यवस्थित है कि मात्र इसलिए विनिर्दिष्ट पालन का अनुदान हमेशा आवश्यक नहीं होता है क्योंकि ऐसा करना कानूनी है। यह भी सुव्यवस्थित है कि न्यायालय अपने विवेकाधिकार से विनिर्दिष्ट पालन की डिक्री देने या अस्वीकार करने के दौरान एक पक्षकार द्वारा दूसरे पक्षकार को अतिरिक्त राशि के भुगतान सहित कोई भी युक्तियुक्त शर्त लगा सकता है। क्रेता को विक्रेता को अतिरिक्त राशि देने का निर्देश दिया जाएगा या नहीं, यह मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। आम तौर पर, मुकदमे के लंबित रहने के दौरान कीमत में हुई अभूतपूर्व वृद्धि के कारण वादी को विनिर्दिष्ट पालन की राहत से वंचित नहीं किया जाना चाहिए। किसी दिए गए मामले में, विनिर्दिष्ट पालन की डिक्री को अस्वीकार करने के लिए विचार किए जाने वाले कई अन्य विचारों के अलावा यह भी एक हो सकता है। एक सामान्य नियम के रूप में, यह नहीं माना जा सकता है कि आम तौर पर वादी को मुकदमे के लंबित रहने के दौरान संपत्ति के मूल्य में हुई अभूतपूर्व वृद्धि का पूरा*

लाभ अकेले नहीं दिया जा सकता है। साम्या को संतुलित करते समय, ध्यान में रखने वाली बातों में से एक यह है कि व्यतिक्रमी पक्षकार कौन है। यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि क्या कोई पक्षकार दूसरे पर अनुचित लाभ उठाने की कोशिश कर रहा है एवं साथ ही विनिर्दिष्ट पालन का निर्देश देकर प्रतिवादी को होने वाली कठिनाई भी। ऐसी अन्य परिस्थितियाँ हो सकती हैं जिन पर पक्षकारों का कोई नियंत्रण नहीं हो सकता है। परिस्थितियों की समग्रता को देखा जाना आवश्यक है।"

122. उपरोक्त निर्णय एवं उल्लिखित प्रावधान के आलोक में, यह एक स्थापित विधि है कि विनिर्दिष्ट पालन के उपाय का अनुदान एक विवेकाधीन है। इस तरह के विनिर्दिष्ट अनुतोष का दावा करने वाला पक्ष इस तरह के विनिर्दिष्ट पालन का हकदार हो सकता है, लेकिन न्यायालय के पास इस तरह के विनिर्दिष्ट अनुतोष को न देने का विवेकाधिकार है। हालाँकि, इस तरह के विवेकाधिकार का प्रयोग न्यायालय द्वारा ठोस तर्क के साथ किया जाना चाहिए, न कि मनमाने ढंग से। चूँकि, न्यायालय को न केवल वाद की तिथि पर तथ्यों पर गौर करना है, बल्कि पक्षकारों के आचरण एवं अधिकारों पर भी ध्यान देना है, इसलिए न्यायालय को ऐसा अनुतोष प्रदान करना होगा जो विभिन्न पक्षकारों के अधिकारों को संतुलित करे।

123. अधिनियम की धारा 21 में उस परिदृश्य को दर्शाया गया है जब न्यायालय प्रतिकर अधिनिर्णीत कर सकता है। अधिनियम की धारा 21(3) के तहत, यह कहा गया है कि ऐसी स्थिति में, जहाँ न्यायालय यह निर्णय देता है

कि दूसरे पक्षकार द्वारा संविदा के भंग होने के कारण, ऐसे राहत का दावा करने वाले पक्षकार को विनिर्दिष्ट अनुतोष नहीं दिया जा सकता है, न्यायालय अपने अनुसार प्रतिकर दे सकता है। अधिनियम की धारा 21(5) के अनुसार, विनिर्दिष्ट पालन हेतु वाद में, वादी को तब तक प्रतिकर नहीं दिया जा सकता जब तक कि वादी खुद इसका दावा न करे। वादी कार्यवाही के किसी भी चरण में ऐसे प्रतिकर का दावा कर सकता है तथा न्यायालय तब उसे ऐसा प्रतिकर देगा। संदर्भ हेतु निम्न प्रासंगिक प्रावधानों को दोहराया गया है:

> "21. *कुछ मामलों में प्रतिकर अधिनिर्णीत करने की शक्ति*
>
> *(2) यदि, इस तरह के किसी भी वाद में, न्यायालय यह तय करती है कि विनिर्दिष्ट पालन नहीं दिया जाना चाहिए, लेकिन पक्षकारों के बीच एक संविदा है जिसे प्रतिवादी द्वारा तोड़ दिया गया है, और वादी उस भंग हेतु प्रतिकर का हकदार है, तो वह उसे तदनुसार ऐसा मुआवजा देगा।*
>
> *(3) यदि, ऐसे किसी वाद में, न्यायालय यह निर्णय लेता है कि विनिर्दिष्ट पालन प्रदान किया जाना चाहिए, लेकिन यह मामले के न्याय को संतुष्ट करने के लिए पर्याप्त नहीं है, तथा यह कि संविदा के भंग के लिए कुछ प्रतिकर भी वादी को दिया जाना चाहिए, तो वह उसे तदनुसार ऐसा प्रतिकर देगा।*
>
> *(4) इस धारा के तहत दिए गए किसी प्रतिकर को अधिनिर्णीत करने की रकम की निश्चित करने में, न्यायालय भारतीय संविदा अधिनियम,* 1872 (9/1872) *की धारा* 73 *में विनिर्दिष्ट सिद्धांतों द्वारा मार्गदर्शित होगा।*
>
> *(5) इस धारा के तहत कोई प्रतिकर तब तक नहीं दिया जाएगा जब तक कि वादी ने अपने वादपत्र में ऐसे प्रतिकर का दावा न किया हो: परन्तु जहाँ वादी ने वादपत्र में ऐसे किसी प्रतिकर का दावा नहीं किया है, वहाँ न्यायालय कार्यवाही के किसी भी चरण में, उसे ऐसे निबंधनों पर वादपत्र*

का संशोधन करने की अनुज्ञा दे सकता है जो ऐसे प्रतिकर के लिए दावा सम्मिलित करने के लिए न्यायसंगत हों।

स्पष्टीकरण - ऐसी परिस्थितियाँ कि संविदा विनिर्दिष्ट पालन के लिए असमर्थ हो गई हैं, न्यायालय को इस धारा द्वारा प्रदत्त अधिकारिता का प्रयोग करने से नहीं रोकती है."

124. अधिनियम की धारा 21 को नियंत्रित करने वाले सिद्धांत को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ***शम्सु सुहरा बीवी बनाम जी एलेक्स,*** **(2004) 8 एससीसी 569** के निर्णय में दोहराया गया है, तथा प्रासंगिक टिप्पणियां इस प्रकार हैं:

"10. *धारा 21 की उप-धारा (4) व (5) प्रतिकर अधिनिर्णीत की अधिकारिता के कुछ पहलुओं पर उच्च न्यायालयों में राय के कुछ मतभेद को हल करती प्रतीत होती है। विधि आयोग ने अपनी नौवीं विधि आयोग की रिपोर्ट दिनांक 19-7-1958 (पृष्ठ 18 व 19) में देखा कि इस बात पर न्यायिक राय में अंतर था कि क्या न्यायालय में विनिर्दिष्ट पालन के लिए एक वाद में प्रतिकर अधिनिर्णीत करने की शक्ति है, जहां वादी ने विशेष रूप से वादपत्र में इसके लिए प्रार्थना नहीं की है। लाहौर उच्च न्यायालय ने आर्य प्रदेशक प्रीतिनिधि सभा बनाम लाहौरी मल [आईएलआर (1924) 5 लाह 509 : एआईआर 1924 लाह 713] में यह दृष्टिकोण अपनाया है कि न्यायालय के पास विनिर्दिष्ट पालन के बदले में या इसके अतिरिक्त नुकसान अधिनिर्णीत करने की शक्ति है, भले ही वादी ने वादपत्र में इसका विशेष रूप से दावा न किया हो। मद्रास उच्च न्यायालय ने सोमसुंदरम चेट्टियार बनाम चिदंबरम चेट्टियार [एआईआर 1951 मैड 282 : (1950) 2 एमएलजे 509] में विपरीत दृष्टिकोण अपनाया तथा अभिनिर्धारित किया कि न्यायालय नुकसान हेतु विशिष्ट दावे एवं उचित अभिवचनो◌े के अभाव में विनिर्दिष्ट पालन के अतिरिक्त क्षतिपूर्ति नहीं दे सकता है, जिसमें यह बताया गया हो कि विनिर्दिष्ट पालन की राहत मामले के न्याय को संतुष्ट करने हेतु अपर्याप्त क्यों होगी तथा कितनी राशि दी जानी चाहिए। विधि*

आयोग ने सिफारिश की कि मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किया गया दृष्टिकोण इस सिद्धांत पर आधारित प्रतीत होता है कि प्रत्येक मामले में उचित अभिवचन होने चाहिये। जबकि यह उचित है कि न्यायालय को किसी भी मामले में नुकसान अधिनिर्णीत करने का पूर्ण विवेकाधिकार होना चाहिए, जैसा वह उचित समझे, दूसरी ओर, यदि उचित अभिवचन के बिना उसके विरुद्ध डिक्री पारित की जाती है, तो प्रतिवादी के साथ अन्याय व कठिनाई के प्रश्न को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। आयोग ने तदनुसार सिफारिश की कि किसी भी मामले में क्षतिपूर्ति तब तक नहीं दी जानी चाहिए जब तक कि उचित अभिवचनो‍े द्वारा इसका दावा न किया जाए। हालांकि, प्रतिकर के लिए प्रार्थना प्रविष्ट करने हेतु, कार्यवाही के किसी भी चरण में, वादी के लिए संशोधन करना खुला होना चाहिए, चाहे वह विनिर्दिष्ट पालन के बदले में हो या उसके अतिरिक्त। विधानमंडल ने भारत के विधि आयोग द्वारा दिए गए सुझावों को स्वीकार किया तथा मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए दृष्टिकोण को स्वीकार किया कि न्यायालय क्षतिपूर्ति के लिए विनिर्दिष्ट दावे एवं उचित अभिवचनों के अभाव में विनिर्दिष्ट पालन के अतिरिक्त प्रतिकर नहीं दे सकता है, जिसमें यह बताया गया हो कि विनिर्दिष्ट पालन की राहत मामले के न्याय को संतुष्ट करने हेतु अपर्याप्त क्यों होगी तथा वादी प्रतिकर का हकदार नहीं होगा।"

125. अधिनियम की धारा 20 एवं धारा 21 के अनुसार, इस न्यायालय को विनिर्दिष्ट पालन के बदले व्यथित पक्षकार को प्रतिकर देने का विवेकाधिकार निहित है। उपर्युक्त सिद्धांत को निर्णयों की एक श्रृंखला में भी प्रतिपादित किया गया है जिनकी चर्चा यहां नीचे की गई है।

126. इसके अलावा, इस न्यायालय ने हाल ही में ***यूनिवर्सल पेट्रो-केमिकल्स लिमिटेड बनाम बी.पी. पीएलसी,*** **(2022) 6 एससीसी 157** के निर्णय में सिद्धांत को दोहराया है, तथा इसे निम्न पुन: प्रस्तुत किया गया है:

> **"29.** *इस न्यायालय ने शम्सू सुहारा बीवी बनाम जी एलेक्स [शम्सू सुहारा बीवी बनाम जी एलेक्स, (2004) 8 एससीसी 569] में धारा 21(4) एवं (5) के दायरे की जांच की थी। इस न्यायालय ने भारत के विधि आयोग की सिफारिश का हवाला दिया कि किसी भी मामले में प्रतिकर पर निर्णय नहीं सुनाया जाना चाहिए, जब तक कि उचित अभिवचनों के जरिए इसका दावा न किया जाए। हालांकि, विधि आयोग की राय थी कि वादी को कार्यवाही के किसी भी चरण में प्रतिकर के लिए प्रार्थना करने के लिए शिकायत में संशोधन की मांग करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए, चाहे वह विनिर्दिष्ट पालन के बदले में हो या अतिरिक्त। उक्त मामले में बिक्री करार के भंग हेतु करार के प्रदर्शन के अतिरिक्त या उसके स्थान पर प्रतिकर का कोई दावा नहीं किया गया था। बेशक, बिक्री करार के पालन के अतिरिक्त या उसके स्थान पर प्रतिकर की मांग करते हुए शिकायत में कोई संशोधन नहीं किया गया था। : (एससीसी पृ. 576, पैरा 11)*
>
> > "11. ... हमारे विचार में, उच्च न्यायालय ने धारा 21 के तहत विनिर्दिष्ट पालन के अनुतोष के अतिरिक्त प्रतिकर देने में स्पष्ट रूप से त्रुटि की है, जबकि इस आशय की प्रार्थना या तो वादपत्र में की गई थी या कार्यवाही के किसी बाद के चरण में उसमें संशोधन करके विनिर्दिष्ट पालन के अनुतोष के अतिरिक्त प्रतिकर देने को शामिल किया गया था। विधि के स्पष्ट प्रावधानों के विपरीत ऐसे अनुतोष देना स्वीकार्य नहीं है। न्यायसंगत विचारों पर न्यायालय विधि के प्रावधानों की नज़रअंदाज या अनदेखी नहीं कर सकता है। साम्या विधि के अधीन होनी चाहिये।"

> ***30.*** *अपीलार्थी की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता एवं प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए इस न्यायालय के निर्णयों पर सावधानीपूर्वक विचार करने पर, हमारा विचार है कि अपीलार्थी दिनांक* 24-8-2005 *एवं* 31-12-2009 *के बीच की अवधि के लिए नुकसान का दावा करने का हकदार नहीं है।*
>
> ***31.*** *विद्वान एकल न्यायाधीश ने अपने निर्णय में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया कि अपीलार्थी ने क्षतिपूर्ति के लिए किसी अनुतोष का दावा नहीं किया। अपीलार्थी द्वारा दायर अपील में भी, अपीलार्थी द्वारा क्षतिपूर्ति के लिए किसी अनुतोष का दावा नहीं किया गया था। वास्तव में, अपीलार्थी की ओर से खंड न्यायपीठ के समक्ष यह एक विनिर्दिष्ट प्रस्तुति थी कि क्षतिपूर्ति और/या प्रतिकर की प्रकृति में कोई अनुतोष प्रदान नहीं किया जा सकता है। यह प्रस्तुत किया गया था कि इस तरह की क्षतिपूर्ति/प्रतिकर की मात्रा निर्धारित करना कठिन था क्योंकि न तो व्यवसाय की प्रत्याशित हानि एवं न ही सद्भावना के अनुमानित मूल्य का पूर्वानुमान लगाया जा सकता था। यह सच हो सकता है कि अपीलार्थी सहयोग करार के विनिर्दिष्ट पालन के अनुतोष में रुचि रखता था जब उसने वर्ष 2008 में विशेष अनुमति याचिका दायर की थी क्योंकि सहयोग करार दिनांक 31-12-2009 तक कायम था। हालाँकि, उसके बाद भी अपीलार्थी द्वारा क्षतिपूर्ति या प्रतिकर के अनुतोष हेतु विशेष रूप से अभिवचन देने के लिए कोई कदम नहीं उठाया गया था।*

127. इसके अलावा, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***जगदीश सिंह बनाम नत्थू सिंह,*** **(1992) 1 एससीसी 647** के निर्णय में, जिस पर माननीय न्यायालय ने ***उर्मिला देवी बनाम मंदिर श्री चामुंडा देवी,*** **(2018) 2 एससीसी 284** में भरोसा किया था, उन मामलों में दिए जाने वाले प्रतिकर के पहलू से निपटान किया है जहां विनिर्दिष्ट पालन के अनुतोष की अनुमति नहीं है। उपर्युक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ इस प्रकार हैं:

"16. *जहां तक उपधारा (5) के परंतुक का संबंध है, दो स्थितियों को स्पष्ट रूप से विभेदित रखा जाना चाहिए। यदि संशोधन विनिर्दिष्ट पालन के बदले या इसके अतिरिक्त प्रतिकर के अनुतोष से संबंधित है, जहां वादी ने विनिर्दिष्ट पालन के अपने अनुतोष को नहीं त्यागा है, तो न्यायालय कार्यवाही के किसी भी चरण में संशोधन की अनुमति देगा। यह विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 21 के अंतर्गत प्रतिवाद का दावा है तथा संशोधन उपधारा (5) के प्रावधान के अंतर्गत है। लेकिन अलग एवं कम उदार मानक लागू होते हैं यदि संशोधन द्वारा जिसकी मांग की जाती है वह विनिर्दिष्ट पालन हेतु एक वाद को संविदा भंग हेतु नुकसान के लिए एक वाद में परिवर्तित करना है, जिस स्थिति में संविदा अधिनियम की धारा 73 को लागू किया जाता है। यह संशोधन नियम 17 आदेश 6, सि.प्र.सं. के अनुशासन के तहत है। तथ्य यह है कि उपधारा (4), बदले में, प्रतिकर के निर्धारण एवं मूल्यांकन के सिद्धांतों के लिए भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 73 को लागू करती है, इस अंतर को मिटा नहीं देती है।*

17. *धारा 21 के प्रावधान प्रतिकर देने के अधिकार क्षेत्र के कुछ पहलुओं पर उच्च न्यायालयों में न्यायिक राय के कुछ मतभेदों को हल करते प्रतीत होते हैं। उप-धारा (5) उच्च न्यायालयों के बीच न्यायिक राय के मतभेद को दूर करने का प्रयास करती है कि क्या मुआवज़ा देने के लिए वादपत्र में कोई विशिष्ट दावा आवश्यक है। इंग्लैंड में लॉर्ड केयर्न (चांसरी संशोधन) अधिनियम, 1858 ने साम्या न्यायालयों को विनिर्दिष्ट पालन के स्थान पर या इसके अतिरिक्त हर्जाना देने की अधिकारिता प्रदान करने का प्रयास किया। भंग के लिए उपचारों की प्रकृति के चुनाव के मामले में सामान्य विधि एवं साम्या न्यायालयों के बीच अधिकार क्षेत्र में पहले के द्वंद्व को देखते हुए यह आवश्यक हो गया था। सामान्य विधि में संविदा के भंग हेतु उपाय हर्जाना था। साम्या न्यायालय ने विनिर्दिष्ट पालन के उपाय का आविष्कार किया क्योंकि हर्जाने का उपाय एक अपर्याप्त उपाय पाया गया था। लॉर्ड केयर्न अधिनियम, 1858 ने साम्या न्यायालयों को हर्जाना देने की*

अधिकारिता भी प्रदान की ताकि दोनों अनुतोषों को एक ही न्यायालय द्वारा प्रशासित किया जा सके। अधिनियम की धारा 2 में प्रावधान है:

> *"2. ... उन सभी मामलों में जिनमें चांसरी न्यायालय को किसी प्रसंविदा, संविदा या करार के विनिर्दिष्ट पालन के लिए आवेदन पर विचार करने की अधिकारिता प्राप्त है, उसी न्यायालय के लिए यह वैध होगा कि यदि वह ऐसे विनिर्दिष्ट पालन के अतिरिक्त या उसके स्थान पर क्षतिग्रस्त पक्षकार को हर्जाना देना उचित समझे एवं ऐसे हर्जाने का आकलन न्यायालय के निर्देशानुसार किया जा सकता है।"*

18. *यह विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 21 तथा इसके पूर्ववर्ती अधिनियम, 1877 की धारा 19 के प्रावधानों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है।*

19. *मोहम्मद अब्दुल जब्बार बनाम लालमिया [एआईआर 1947 नाग 254 : 1947 एनएलजे 253 : आईएलआर 1947 नाग 328] में दिनांक 16 जनवरी, 1934 को हुए बिक्री करार का विनिर्दिष्ट पालन दिनांक 15 जनवरी, 1937 को वाद संस्थित करके मांगा गया था। वाद के लंबित रहने के दौरान, दिनांक 20 अप्रैल, 1937 को प्रांतीय सरकार ने वाद की विषय-वस्तु के संबंध में भूमि अधिग्रहण की कार्यवाही शुरू की तथा उसे अधिग्रहित कर लिया गया। उच्च न्यायालय ने विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद को खारिज करने को बरकरार रखा तथा हर्जाने के लिए संशोधन का उल्लेख किया। विनिर्दिष्ट पालन की स्पष्ट अस्वीकार्यता पर नागपुर उच्च न्यायालय ने कहा: (एआईआर पृष्ठ 256, पैरा 14)*

> *"तदनुसार हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि विनिर्दिष्ट पालन अब असंभव है तथा हम इसे 'प्रकृति की जैसी साम्या व्यर्थ नही' के लिए निर्धारित नहीं कर सकते हैं, क्योंकि यह व्यर्थ में कुछ भी नहीं करती है। हम वादीगण-अपीलार्थीगण को उस प्रतिकर की रकम का हकदार नहीं मान सकते हैं जिसमें संपत्ति को*

परिवर्तित किया गया था क्योंकि उनका उस संपत्ति में कोई अधिकार या हित नहीं था...।"

20. पैसे के भुगतान के लिए अनुतोष के लिए संशोधन से इनकार करते हुए उच्च न्यायालय ने कहा: (*एआईआर पृ.* 256, *पैरा* 14)

"हम संशोधन की अनुमति इसलिए भी नहीं देंगे क्योंकि विचारण न्यायालय द्वारा पाए गए तथ्यों (जिनसे हमें असहमत होने का कोई कारण नहीं दिखता) के आधार पर हम विनिर्दिष्ट पालन से इनकार कर देते, तथा इस आधार पर नुकसान के लिए दावा भी खारिज हो जाता क्योंकि नुकसान तभी दिया जा सकता था जब विनिर्दिष्ट पालन का दावा सही तरीके से किया गया हो। इसलिए अपील विफल हो जाती है और भार के साथ खारिज की जाती है।"

21. *इन निष्कर्षों के समर्थन के लिए अक्सर उद्धृत, लेकिन संभवतः त्रुटिपूर्ण समझा गया मामला अर्देशिर एच. मामा बनाम फ्लोरा सैसून [एआईआर 1928 पीसी 208 : 55 अंतर.आ. 360 : 52 बॉम 597] से समर्थन लिया गया था। नागपुर उच्च न्यायालय द्वारा सैसून मामले [आईडी. पृ. 217] में दिए गए अंश पर भरोसा किया गया है: (एआईआर पृ. 256, पैरा 10)*

"निर्णयों की श्रृंखला में यह लगातार अभिनिर्धारित किया गया था कि जिस तरह अतिरिक्त हर्जाना देने की उसकी शक्ति का प्रयोग एक ऐसे वाद में किया जाना था जिसमें न्यायालय ने विनिर्दिष्ट पालन दिया था, इसलिए विनिर्दिष्ट पालन के विकल्प के रूप में हर्जाना देने की शक्ति उस मामले तक विस्तारित नहीं हुई जिसमें वादी ने अनुतोष के उस रूप का दावा करने से स्वंय को वंचित कर दिया था, न ही ऐसे मामले में जिसमें वह अनुतोष असंभव हो गया था।

ससून मामला [एआईआर 1928 पीसी 208 : 55 अं.आ 360 : 52 बॉम 597] नुकसान के वैकल्पिक अनुतोष के तहत ऊपर वर्णित मामलों की पहली श्रेणी में आता है। यह मामला दूसरे

भाग में आता है जहाँ विनिर्दिष्ट पालन का अनुतोष असंभव हो गया है।

(जोर दिया गया)

22. *नागपुर उच्च न्यायालय के अवलोकन का दूसरा भाग, विद्वान न्यायाधीशों के प्रति बहुत सम्मान के साथ, भारतीय विधि में विनिर्दिष्ट प्रस्थान की गैर-धारणा से उत्पन्न भ्रांति पर आधारित है। लॉर्ड केयर्न के अधिनियम, 1858 में, जब संविदा किसी भी कारण से विनिर्दिष्ट पालन के अयोग्य हो गया था, तो क्षतिपूर्ति प्रदान नहीं की जा सकती थी। लेकिन भारतीय विधि के तहत स्पष्टीकरण एक विनिर्दिष्ट प्रस्थान करता है तथा क्षतिपूर्ति प्रदान करने की अधिकारिता इस तथ्य से अप्रभावित रहती है कि वादी की किसी भी गलती के बिना, संविदा विनिर्दिष्ट पालन के अयोग्य हो जाती है। वास्तव में, सैसून मामला [एआईआर 1928 पीसी 208 : 55 अंतर.आ. 360 : 52 बॉम 597] नागपुर उच्च न्यायालय द्वारा बताए गए महत्व हेतु अतिसंवेदनशील नहीं है। सैसून मामला [एआईआर 1928 पीसी 208 : 55 अंतर.आ. 360 : 52 बॉम 597] ने स्वयं ही 1877 अधिनियम की धारा 19 में स्पष्टीकरण द्वारा भारतीय विधि में किए प्रस्थान को इंगित किया, जो 1963 अधिनियम की धारा 21 के स्पष्टीकरण के समान है। न्यायिक समिति ने, निस्संदेह, कहा कि 1877 अधिनियम की धारा 19 "लॉर्ड केयर्न के अधिनियम के समान सिद्धांत को समाहित करती है तथा अंग्रेजी विधि से अधिक कुछ नहीं करती है जो न्यायालय को किसी विनिर्दिष्ट पालन वाद में 'इसके उल्लंघन हेतु प्रतिकर' देने का अधिकार देती है, जहाँ सुनवाई के दौरान वादी ने अपनी कार्रवाई से खुद को किसी विनिर्दिष्ट डिक्री के लिए पूछने से रोक दिया था"। लेकिन जिस बात को नज़रअंदाज़ किया गया वह लॉर्ड ब्लेन्सबर्ग की यह टिप्पणी थी: (एआईआर पृष्ठ 218)*

> *"स्पष्टीकरण में दिए गए मामले को छोड़कर - जिसके संबंध में इंग्लैंड में विस्तारित लॉर्ड केयर्न के अधिनियम से स्पष्ट रूप से भिन्नता प्रस्तुत की गई है...।"*

(जोर दिया गया)

27. *प्रतिकर का परिमाण भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 73 के मानकों के अनुसार है। यहाँ भी बैन बनाम फ़ोदरगिल [(1874) एलआर 7 एचएल 158 : 31 एलटी 387] में अंग्रेजी नियम लागू नहीं होता है कि संविदा को भंग करने पर खरीदार अपने सौदे के नुकसान की भरपाई नहीं कर सकता है। पोलक व मुल्ला संविदा पर (10वां संस्करण) में इस मामले पर विधि इस प्रकार निर्धारित की गयी है:*

(*पृष्ठ* 663)

> "*इसलिए, जहां भूमि का एक खरीदार अपने सौदेबाजी के नुकसान के लिए क्षतिपूर्ति का दावा करता है, यह तय किया जाने वाला प्रश्न यह है कि क्या उसे कथित रूप से नुकसान हुआ है 'स्वाभाविक रूप से इस तरह के भंग से चीजों के सामान्य पाठ्यक्रम में उत्पन्न हुआ'; तथा एक साधारण मामले में अन्यथा धारण करना मुश्किल होगा*"

28. *विद्वान निर्णयकर्ता नागरदास बनाम अहमदखान [(1895) 21 बोम 175] में फर्रान सी.जे. की निम्नलिखित टिप्पणियों को अपनाते हैं:*

> *"विधायिका ने भूमि से संबंधित संविदा के मामले में नुकसान का परिमाण निर्धारित नहीं किया है, जो वस्तुओं से संबंधित संविदा के मामले में निर्धारित किया गया है।"*

29. *वर्तमान मामले में प्रतिकर की मात्रा का आकलन करने में कोई कठिनाई नहीं है। भूमि अधिग्रहण की कार्यवाहियों में बाजार मूल्य के निर्धारण के संदर्भ में इसका पता लगाया जा सकता है। अधिनिर्णीत प्रतिकर सुरक्षित रूप से क्षतिपूर्ति का परिमाण का विषय माना जा सकता है, बशर्ते कि इसमें से अपीलार्थी द्वारा व्यय के दावों को आगे बढ़ाने में खर्च की गई सेवाओं, समय एवं ऊर्जा के धन मूल्य एवं पंचाट में परिणत होने वाले मुकदमे में उसके द्वारा किए गए व्यय को घटाया जाए।"*

128. वर्तमान वाद में, वादीगण ने विनिर्दिष्ट पालन के बदले प्रतिकर के अनुदान हेतु प्रार्थना की है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, इस न्यायालय

ने वादीगण को विनिर्दिष्ट पालन की राहत नहीं दी है, इसलिए, यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि अधिनियम की धारा 20 व 21 के संदर्भ में तथा जिन निर्णयों पर भरोसा किया गया है, वादीगण प्रतिकर के अनुदान के हकदार हैं।

129. जैसा कि उपरोक्त सं. 1 व 4 में चर्चा की गई है, याचिकाकर्ता विनिर्दिष्ट पालन के अनुतोष का हकदार नहीं है। हालांकि, अधिनियम की धारा 21 के मद्देनजर, जिसमें कहा गया है कि वादीगण वैकल्पिक रूप से विनिर्दिष्ट पालन के बदले प्रतिकर के लिए प्रार्थना कर सकते हैं, इस न्यायालय का विचार है कि वादीगण इस तरह के प्रतिकर का दावा कर सकते हैं तथा उक्त दावे की अनुमति दी जाती है।

130. तदनुसार, यह निर्णय लिया जाता है कि याचिकाकर्ता विनिर्दिष्ट पालन के बदले प्रतिकर का हकदार है।

<u>प्रतिकर की मात्रा</u>

131. अब उप-मुद्दे का उल्लेख (ii) - *यदि ऐसा प्रतिकर दिया जा सकता है, तो प्रतिवादी द्वारा वादीगण को देय प्रतिकर की मात्रा क्या होगी*?

132. एक अन्य पहलू जिस पर इस न्यायालय द्वारा विचार करने की आवश्यकता है, वह है वादीगण को दिए जाने वाले प्रतिकर की मात्रा। अधिनियम की धारा 21 के अनुसार, प्रतिकर की मात्रा के निर्धारण हेतु,

न्यायालय भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 73 का पालन करेगा। अधिनियम की धारा 21 के प्रासंगिक भाग को संदर्भ हेतु नीचे दोहराया गया है:

> *"(4) इस धारा के अंतर्गत दिए गए किसी प्रतिकर की राशि का निर्धारण करने में न्यायालय भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 (9/1872) की धारा 73 में निर्दिष्ट सिद्धांतों द्वारा निर्देशित होगा।"*

133. भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 73 के अंतर्गत नुकसान की गणना परोक्ष के आधार पर की जाती है, अतः नुक्सान वादी द्वारा झेली गई क्षतिपूर्ति की सीमा तक प्रदान की जाएगी।

134. उपरोक्त सिद्धांत पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ***जगदीश सिंह बनाम नत्थू सिंह, (1992)*** **1 एससीसी 647** के निर्णय में चर्चा की गई है, उसी के प्रासंगिक पैराग्राफ इस प्रकार हैं:

> *27. प्रतिकर का परिमाण भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 73 के मानकों के अनुसार है। यहाँ भी बैन बनाम फ़ोदरगिल [(1874) एलआर 7 एचएल 158 : 31 एलटी 387] में अंग्रेजी नियम लागू नहीं होता है कि संविदा को भंग करने पर खरीदार अपने सौदे के नुकसान की भरपाई नहीं कर सकता है। पोलक व मुल्ला संविदा पर (10वां संस्करण) में इस मामले पर विधि इस प्रकार निर्धारित की गयी है:*
>
> (*पृष्ठ* 663)
>
> > *"इसलिए, जहां भूमि का एक खरीदार अपने सौदेबाजी के नुकसान के लिए क्षतिपूर्ति का दावा करता है, यह तय किया जाने वाला प्रश्न यह है कि क्या उसे कथित रूप से नुकसान हुआ है 'स्वाभाविक रूप से इस तरह के भंग से चीजों के सामान्य पाठ्यक्रम में उत्पन्न हुआ'; तथा एक साधारण मामले में अन्यथा धारण करना मुश्किल होगा"*

28. *विद्वान निर्णयकर्ता नागरदास बनाम अहमदखान [(1895) 21 बोम 175] में फर्रान सी.जे. की निम्नलिखित टिप्पणियों को अपनाते हैं:*

> *"विधायिका ने भूमि से संबंधित संविदा के मामले में नुकसान का परिमाण निर्धारित नहीं किया है, जो वस्तुओं से संबंधित संविदा के मामले में निर्धारित किया गया है।"*

135. उपरोक्त निर्णय के मद्देनजर, यह एक सुस्थापित सिद्धांत है कि न्यायालय केवल ऐसे नुक्सान का मात्र पंचाट देगा जो पक्षकार को हुआ है। उसी के संबंध में सबूत का भार, उस पक्षकार पर निहित होगा जो इस तरह के नुकसान का दावा कर रहा है।

136. इस न्यायालय का विचार है कि वादीगण प्रार्थना (ii) में प्रार्थना के अनुसार प्रतिकर के अनुतोष के हकदार हैं तथा इसलिए, भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 73 के तहत उल्लिखित सिद्धांतों का पालन करके वादीगण के नुकसान का पता लगाया जाना चाहिए।

<u>नुकसान के दावे हेतु सबूत के भार के संबंध में सिद्धांत</u>

137. यह न्यायालय, प्रतिकर की मात्रा तय करने हेतु, अब सबूत के भार के पहलू पर विचार करेगा, जिसे वादपत्र में मांगे गए प्रतिकर का हकदार होने हेतु वादीगण को पूरा करना होगा।

138. भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 102 को इस न्यायालय के संदर्भ के लिए नीचे दोहराया गया है:

> "102. *सबूत का भार किस पर है। - किसी वाद या कार्यवाही में सबूत का भार उस व्यक्ति पर होता है जो असफल हो जाएगा यदि किसी भी पक्षकार की ओर से कोई साक्ष्य न दिया गया हो।*

139. उपरोक्त प्रावधान के आलोक में, सबूत के भार के संबंध में, यह प्रतिपादित किया जाता है कि उक्त भार उस व्यक्ति पर पड़ेगा जो परिणाम झेलेगा, इस स्थिति से यह पता चला है कि यहा कोई साक्ष्य मौजूद नहीं हैं।

140. साबित करने के भार का सिद्धांत साक्ष्यों के सबूतों के भार को तय करने के निर्णय में पालन किया जाता है। उक्त सिद्धांत के पीछे सामान्य सिद्धांत यह है कि कोई पक्षकार, जो किसी प्रस्ताव की पुष्टि का आरोप लगाता है, उसे इसे साबित करना होगा। सबूत का भार उस पक्षकार पर होता है जो अपने मामले को किसी विशेष तथ्य से समर्थन देना चाहता है जिसके बारे में उसे संज्ञान होना चाहिए। सिविल मामलों में सबूत का भार घटनाओं की प्रधानता पर आधारित होता है, जबकि आपराधिक मामलों में सबूत का भार उचित संदेह से परे साबित करने के सिद्धांत पर आधारित होता है।

141. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***महेश दत्तात्रेय तीर्थकर बनाम महाराष्ट्र राज्य,*** **(2009) 11 एससीसी 141** के निर्णय में उपरोक्त सिद्धांत पर विस्तार से संव्यवहार किया है, तथा निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:

> ***"46.*** *अपीलार्थी द्वारा जांच हेतु प्रस्तुत साक्षी के परिसाक्ष्य में असंगति एवं अयोग्यता के बारे में उच्च न्यायालय के निष्कर्षों पर आते हुए, इस बात पर जोर दिया जाता है कि सिविल मामलों में सबूत का भार "संभावना के*

संतुलन" का होता है न कि "उचित संदेह से परे" का होता है। इस प्रकार साक्ष्य में मामूली असंगतता सिविल मामलों में इस भार के निर्वहन के प्रश्न पर विचार करने में प्रासंगिक नहीं है। इस सिद्धांत को इस न्यायालय ने कई निर्णयों में दोहराया है, नामतः, सरजूदास बनाम गुजरात राज्य [(1999) 8 एससीसी 508 : 1999 एससीसी (आप) 1501 : एआईआर 2000 एससी 403] तथा राजस्थान राज्य बनाम नेत्रपाल [(2007) 4 एससीसी 45 : (2007) 2 एससीसी (आप) 187]

***47.** इसके अलावा, साक्ष्य में सभी विसंगतियां साक्षी की विश्वसनीयता एवं इसलिए उसकी परिसाक्ष्य की विश्वसनीयता को प्रभावित नहीं कर सकती है। इस न्यायालय ने रम्मी बनाम मध्य प्रदेश राज्य [(1999) 8 एससीसी 649 : 2000 एससीसी (आप) 26] में अभिनिर्धारित किया है कि केवल विरोधात्मक बयान ही साक्षियों की विश्वसनीयता को प्रभावित करेंगे। हमारा मानना है कि अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य में उच्च न्यायालय द्वारा इंगित की गई विसंगतियां केवल मामूली विसंगतियां हैं तथा उन पर भरोसा न करने का समुचित आधार नहीं है।"*

142. इसके अलावा, सिविल मामले में सबूत के भार के सिद्धांत को भी ***नारायण गोविंद गावटे बनाम महाराष्ट्र राज्य*** **(1977) 1 एससीसी 133** में प्रतिपादित किया गया है, जिसमें माननीय न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है;

***"16.** फिप्सन ऑन एविडेंस (11वां संस्करण) (पृष्ठ 40, पैरा 92) में, हम पाते हैं कि सिद्धांतों को इस तरह से बताया गया है जो हमारे साक्ष्य अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों के अर्थों पर विचारणीय प्रकाश डालता है:*

"न्यायिक कार्यवाही में प्रयुक्त वाक्यांश 'सबूत का भार' के दो अलग-अलग एवं अक्सर भ्रमित करने वाले अर्थ होते हैं:

(1) *विधि एवं अभिवचन के मामले के रूप में सबूत का भार - भार, जैसा कि इसे कहा गया है, एक मामले को स्थापित करने*

का, चाहे साक्ष्य के आधार पर, या उचित संदेह से परे; तथा (2) साक्ष्य पेश करने के अर्थ में सबूत का भार।

इसलिये इसकी व्याख्या की गयी है:

"सबूत का भार, इस अर्थ में, पक्षकार पर टिका हुआ है, चाहे वादी या प्रतिवादी, जो इस मुद्दे की पुष्टि पर काफी जोर देता है। 'यह एक प्राचीन नियम है जो अच्छी समझ के विचारों पर स्थापित किया गया है, तथा इसे बिना किसी मजबूत कारणों के नहीं छोड़ा जाना चाहिए। यह विचारण की शुरुआत में अभिवचनों की स्थिति द्वारा तय किया जाता है, तथा इसे विधि के प्रश्न के रूप में व्यवस्थित किया जाता है, पूरे वाद में अपरिवर्तित रहता है जहां अभिवचन इसे रखता हैं, तथा कभी भी किसी भी परिस्थिति में स्थानांतरित नहीं होता हैं। यदि, जब सभी साक्ष्य, जिसके द्वारा पेश किए गए हैं, जिस पक्षकार पर यह भार है, उसने इसका निर्वहन नहीं किया है, तो निर्णय उसके खिलाफ होना चाहिए"

17. *विभिन्न प्रकार के मामलों में सबूत के भार से संबंधित नियमों के आवेदन को फिप्सन में निर्णीत मामलों के संदर्भ में विस्तृत एवं सचित्र रूप में प्रस्तुत किया गया है (देखें पृष्ठ 40, पैरा 93):*

"यह तय करने में कि कौन सा पक्षकार सकारात्मक का दावा करता है, निश्चित रूप से इस मुद्दे के सार हेतु संबंध होना चाहिए, न कि केवल इसके व्याकरणिक रूप हेतु, जिसे बाद में अधिवक्ता अपनी इच्छानुसार बदल सकता है, इसके अलावा एक नकारात्मक आरोप को केवल एक सकारात्मक आरोप के साथ भ्रमित नहीं किया जाना चाहिए। नियम का सही अर्थ यह है कि जहां एक दिया गया आरोप, चाहे सकारात्मक हो या नकारात्मक, किसी पक्ष के मामले का एक अनिवार्य हिस्सा बनता है, ऐसे आरोप का सबूत उस पर निर्भर करता है; उदाहरण के लिए, अनुबंध के अनुसार मरम्मत न करने के लिए एक किरायेदार के खिलाफ कार्रवाई में, या एक घोड़ा-विक्रेता के खिलाफ कि एक वारंटी के साथ बेचा गया घोड़ा खराब है, इन

आरोपों का सबूत वादी पर है, इसलिए दुर्भावनापूर्ण अभियोजन के कार्यों में, यह न केवल यह दिखाने के लिए उस पर है कि प्रतिवादी ने उस पर असफल वाद चलाया, बल्कि उचित एवं संभावित कारण की अनुपस्थिति भी; जबकि अप्राधिकृत बंदीकरण हेतु कार्यों में, उचित कारण के अस्तित्व का सबूत प्रतिवादी पर है, क्योंकि गिरफ्तारी, अभियोजन के विपरीत, प्रथम दृष्टया एक अपकृत्य है और न्याय की मांग करती है। जमानत के मामलों में, उपनिहती को यह साबित करना होगा कि माल उसकी गलती के बिना खो गया था। न्यायालय (आपातकालीन शक्तियां) अधिनियम, 1939 के तहत, यह साबित करने का भार कि प्रतिवादी तुरंत निर्णय को संतुष्ट करने में असमर्थ था तथा यह असमर्थता युद्ध के कारण उत्पन्न परिस्थितियों से उत्पन्न हुई थी, जो प्रतिवादी पर था। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1949 के तहत बनाए गए नियमों के उल्लंघन का आरोप लगाने वाली चुनाव याचिका में, न्यायालय साक्ष्य को समग्र रूप से देखेगा, तथा यदि याचिकाकर्ता द्वारा उल्लंघन साबित भी कर दिया जाता है, तो यह दिखाने का भार कि चुनाव कानून के अनुसार काफी हद तक आयोजित किया गया था, जो प्रतिवादी पर नहीं है। जहां कोई निगम वैधानिक शक्तियों के तहत कोई कार्य करता है जो विधि निर्धारित नहीं करता है, एवं वह कार्य दूसरों के अधिकारों का उल्लंघन करता है, तो यह दिखाने का भार निगम पर है कि शक्ति को लागू करने का कोई अन्य व्यावहारिक तरीका नहीं था जिससे वह प्रभाव न हो।"

18. *अब अपने साक्ष्य अधिनियम के प्रावधानों की ओर देखते हुए, हम पाते हैं कि धारा 101 में किसी मामले को साबित करने का सामान्य या स्थिर भार इस प्रकार बताया गया है:*

"101. *जो कोई भी किसी न्यायालय से तथ्यों के अस्तित्व पर निर्भर किसी विधिक अधिकार या दायित्व के बारे में निर्णय देने*

की इच्छा रखता है, जिसे वह दावा करता है, उसे यह सिद्ध करना होगा कि वे तथ्य विद्यमान हैं।

जब कोई व्यक्ति किसी तथ्य के अस्तित्व को साबित करने के लिए बाध्य होता है, तो यह कहा जाता है कि सबूत का भार उस व्यक्ति पर होता है।'

सिद्धांत को धारा 102 *में उस दृष्टिकोण से कहा गया है जिसे कभी-कभी साक्ष्य का नेतृत्व करने या पेश करने का भार कहा जाता है जिसे कार्यवाही शुरू करने वाले पक्षकार पर रखा जाता है। जो यह कहता है:*

> "102. *किसी वाद या कार्यवाही को साबित करने का भार उस व्यक्ति पर होता है जो असफल हो जाता यदि दोनों पक्षकारों में कोई साक्ष्य नहीं दिया जाता है"*

व्यवहार में, इस कम भार को केवल यह दिखाकर उन्मोचित कर दिया जाता है कि मामले में साक्ष्य हैं जो उस पक्षकार द्वारा स्थापित मामले का समर्थन करता है जो पहले न्यायालय में आता है, भले ही उस पक्षकार ने उस साक्ष्य का नेतृत्व किया हो। इस प्रकार किसी वाद के प्रारंभ या कार्यवाही में एकमुश्त बर्खास्तगी से प्रायः बचा जाता है। लेकिन, सबूत की स्थापना या सामान्य साबित करने का भार है। कभी-कभी, प्रत्यर्थीगण की ओर से आने वाले साक्ष्य, या तो उनके प्रवेश या आचरण या विवाद करने में विफलता के रूप में, याचिकाकर्ता या वादी के मामले को इतना सुदृढ़ या उसका समर्थन कर सकते हैं कि किसी मामले को साबित करने या स्थापित करने का भारी भार, जैसा कि धारा 102 *में बताए गए अभिलेख पर कुछ साक्ष्यों के अस्तित्व को पेश करने या दिखाने के मात्र कर्तव्य से अलग है, यह स्वयं निर्वहन किया जाता है। दायित्व का निर्वहन करने के लिए साक्ष्य की पर्याप्तता, साक्ष्य का आकलन करने में स्पष्ट विकृति के उदाहरणों के अलावा, संविधान के अनुच्छेद* 136 *के तहत दी गई विशेष अनुमति द्वारा अपील में एक नियम के रूप*

में इस न्यायालय द्वारा जांच नहीं की जाती है। यह अभिनिर्धारित किया गया है कि यह सवाल कि क्या साबित करने के भार का निर्वहन किया गया है, यह इन *तथ्य में से एक है* (*देखें एआईआर* 1930 *पीसी* 91 [*वली मोहम्मद बनाम मोहम्मद बख्श*, 57 *अंतर.आ.* 86])*। आम तौर पर ऐसा ही होता है।*

19. *"सबूत", जो प्रस्तुत साक्ष्य का प्रभाव है, उसे साक्ष्य अधिनियम की धारा 3 के प्रावधानों द्वारा परिभाषित किया गया है। साक्ष्य के प्रभाव को न्यायालय को यह दिखाने के कर्तव्य या भार से अलग किया जाना चाहिए कि उसे किस निष्कर्ष पर पहुंचना चाहिए। इस कर्तव्य को "साबित करने का भार" कहा जाता है, जो विभिन्न स्थितियों पर लागू कानून के उपयुक्त प्रावधानों के अनुसार, पक्षकारों में से एक पर लगाया जाता है; लेकिन, प्रस्तुत साक्ष्य का प्रभाव न्यायालय द्वारा निकाले जाने वाले अनुमान या निष्कर्ष का विषय है।*

20. *साक्ष्य का कुल प्रभाव एक कार्यवाही के अंत में न केवल साक्ष्य अधिनियम की धारा 101 एवं 102 द्वारा लगाए गए सामान्य कर्तव्यों पर विचार करके निर्धारित किया जाता है, बल्कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 103 एवं 106 जैसे अन्य प्रावधानों द्वारा लगाए गए विशेष या खास लोगों पर भी विचार किया जाता है। धारा 103 अधिनियमित करती है:*

> "103. *किसी विशिष्ट तथ्य के सबूत का भार उस व्यक्ति पर होता है जो न्यायालय से यह कहता है कि उसके अस्तित्व में विश्वास करें, जब तक कि किसी विधि द्वारा यह उपबन्धित न हो कि उस तथ्य के सबूत का भार किसी विशिष्ट व्यक्ति पर होगा।"*

तथा, धारा 106 निर्धारित करती है:

> *"106. जबकि कोई तथ्य विशेषतः किसी व्यक्ति के ज्ञान में है, तब उस तथ्य को साबित करने का भार उस पर है।"*

21. *यह तय करने में कि क्या सामान्य या विशिष्ट या विशेष भार का निर्वहन किया गया है, न्यायालय न केवल मौखिक एवं दस्तावेजी साक्ष्य के*

प्रत्यक्ष प्रभाव पर विचार करेगा, बल्कि यह भी कि अप्रत्यक्ष रूप से क्या अनुमान लगाया जा सकता है क्योंकि कुछ तथ्य साबित हो चुके हैं या जो तथ्य साबित नहीं हुए हैं, यदि वे मौजूद हैं तो उन्हें आसानी से साबित किया जा सकता है जो कानून या तथ्य की धारणा को जन्म देते हैं। साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 तथ्य की धारणाओं की एक विस्तृत श्रृंखला के दायरे में आती है जिसका उपयोग न्यायालयों द्वारा न्याय प्रशासन के दौरान प्रत्यक्ष साक्ष्य की श्रृंखला में कमियों को दूर करने के लिए किया जा सकता है। इसलिए, यह कहा जाता है कि धारणा का कार्य अक्सर साक्ष्य में "कमी की पूर्ति" करना होता है।"

143. सिविल मामलों में साक्ष्य को नियंत्रित करने वाला सिद्धांत यह है कि आपराधिक मामलों के विपरीत उन घटनाओं की प्रधानता होनी चाहिए जिन्हें साबित किया जाना है, जहां साक्ष्यों को उचित संदेह से परे साबित करना होगा। इसके अलावा, सबूत का बोझ उस पक्षकार पर है जो इस तरह के साक्ष्य साबित नहीं होने पर यातना झेलनी होगी।

144. सिविल वादों में सबूत के भार के संबंध में उक्त विधिक स्थिति को वर्तमान वाद के तथ्यों पर लागू करते हुए, सबूत का भार वादीगण पर है, क्योंकि यदि साक्ष्य उनके पक्ष में सिद्ध नहीं होते हैं, तो वादीगण ही राहत प्राप्त करने में असफल होंगे।

145. वादीगण को उन घटनाओं की प्रधानता साबित करनी होगी कि वे मांगे गए मुआवजे के हकदार हैं, यह संकेत कर कि जिन खर्चों का दावा किया जा रहा है, वे वादी द्वारा विधिवत किए गए थे। वाद के साथ संलग्न उपाबंध - क (प्र. अभि.सा.1/घ-ख) समझौता ज्ञापन के तहत दायित्व का पालन करने के

अनुसरण में वादी द्वारा किए गए विभिन्न खर्चों का उल्लेख करता है तथा इसे निम्न पुन: प्रस्तुत किया गया है:

SANGHI BROTHERS (INDORE) PVT.LTD.

Expenses Incurred on behalf of Mr.Kamlendra Singh , Alirajpur

As on 31/03/2004

A	**SANGHI BROS (INDORE) PVT.LTD.**				
	Dec 98 to March 99 (15000/-*4)	60000			
	Apr99 to March 00 (15000/-*12)	180000			
	Apr 00 to May 00 (15000/-*2)	30000			270000
B	**SANGHI BROS (INDORE) PVT.LTD.**				
	Amount paid upto March 01				
	Dec 98 to March 01 @ Rs.10000/- PM				260000
C	**VASANT VIHAR EXPENSES**				
	Expenses on Security & Other expenses				
	4 persons Dec 98 to Apr.03				339200
D	**LEGAL EXPENSES**				
	Consultancy fees paid to J.W.Mahajan			25000	
	T.N.Unni Fees			25000	
	Fees paid to J.B.Dadachanji & Co.			52155	
	Legal fees paid to Mr.A.M.Singhvi			107668	
	Fees paid to Mr.Vijay Asudani			25000	
	Mr.T.N.Unni for fees			150000	
	Other Legal Expenses :-				
	Amit Kumar Chhabra	5000			
	Anup Goel	6626			
	S.S.Gokhale	5000			
	Lekhraj Mehta	7519	24145		408988
E	**TELEPHONE & MOBILE EXPENSES**				381293
F	**TRAVELLING EXPENSES MR.T.R.UNNI**				8418
G	**SUPERVISOR WAGES OF MR.TIKKU(Apr.99 to Mar 04)**				270000
H	**TRAVELLING EXPENSES (Directors)**				65524
I	**OTHER EXPENSES**				57646
			Total Rs.		**2079049**

146. इस न्यायालय ने **प्रतिकर** की मात्रा तय करने के लिए सभी दस्तावेजों को ध्यान में रखा है, जिसके लिए वादीगण हकदार हैं। उक्त **दस्तावेजों** को ध्यान में रखते हुए, इस **न्यायालय** ने वादी के खर्चों की अनुमति दी है जो वे साबित करने में सक्षम हैं। इस **न्यायालय** ने प्रतिवादी की 2,70,000 रुपये की देयता, वाद संपत्ति के खिलाफ मुकदमे के लिए वादीगण द्वारा वहन किए गए विधिक

खर्च, उक्त संपत्ति की सुरक्षा के लिए खर्च, अन्य विभिन्न विविध खर्चों सहित वाद संपत्ति के रखरखाव के लिए खर्च को स्वीकार किया है।

147. वादीगण द्वारा अभिलेख पर रखे गए दस्तावेजों के अनुसार, जिन्हें वे साबित नहीं कर पाए हैं, इस मामले में जो दायित्व लिया गया है, उस पर इस न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया गया है, क्योंकि इस संबंध में अभिलेखों पर पर्याप्त साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किए गए हैं। ऐसे व्ययों में प्रबंधक द्वारा यात्रा व्यय, अनुसूची- क शीर्षक "अन्य व्यय", टेलीफोन व्यय के संबंध में प्रस्तुत दस्तावेज तथा श्री राकेश टिकू के व्यय शामिल हैं। वादीगण यह साबित करने में असमर्थ रहे हैं कि ऐसे व्यय समझौता ज्ञापन के तहत दायित्वों को पूरा करने के लिए किए गए थे।

148. इस समय में, यह उल्लेख करना उचित है कि अभिलेख पर रखी गई सामग्री को देखते हुए, यह इंगित किया जाता है कि वाद संपत्ति में एक तृतीय-पक्ष हित बनाया गया है जिसके खिलाफ विनिर्दिष्ट पालन की मांग की गई है। ऐसी परिस्थिति विनिर्दिष्ट पालन के डिक्री को लागू करने के लिए अन्यायपूर्ण बनाती है तथा उपरोक्त कारणों से विनिर्दिष्ट पालन के बदले प्रतिकर के भुगतान हेतु एक डिक्री न्याय के सिरों को पूरा करेगी।

149. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुये, यह न्यायालय प्रार्थना 'ख', दस्तावेजों, व्ययों, समझौता ज्ञापन की शर्तों एवं सबसे महत्वपूर्ण रूप से न्याय के हित को

ध्यान में रखते हुए, विनिर्दिष्ट पालन हेतु मांगे गए दावे के बदले में एकमुश्त प्रतिकर के रूप में 15,00,000/- रुपये की राशि प्रदान करना उचित समझता है।

150. तदनुसार, मुद्दा संख्या 2 एवं 3 तय किए जाते हैं।

<u>मुद्दा सं. 5 एवं 6</u>

मुद्दा सं. 5 - क्या वादी स्थायी व्यादेश की डिक्री का हकदार है जैसा कि वादी द्वारा दावा किया गया है? ओपीपी

मुद्दा सं. 6 - क्या प्रतिवादीगण द्वारा 2 दिसंबर 1998 के समझौता ज्ञापन, जीपीए एवं एसपीए को रद्द कर दिया गया था? यदि हां, तो इसका क्या प्रभाव हुआ? ओपीडी

151. चूंकि, इस न्यायालय ने यह न्यायनिर्णयन दिया है कि वादीगण विचारणीय एवं महत्वपूर्ण घटनाक्रमों के कारण विनिर्दिष्ट पालन हेतु डिक्री के हकदार नहीं हैं। इसलिए, वादीगण के वाद को वैकल्पिक रूप से अनुरोधित प्रतिकर प्रदान करके आंशिक रूप से डिक्री किया जाता है। इसलिए, मुद्दा सं. 5 एवं 6 को निष्फल माना जाता है तथा उन पर न्यायनिर्णय नहीं दिया है।

मुद्दा सं. 7 - अनुतोष

152. तथ्यों, पूर्व-निर्णयों एवं विधि के आवेदनों के अवलोकन से यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि:

क. वर्तमान वाद 4 मई 2004 को दायर किया गया था, जब वादीगण को प्रतिवादी की ओर से मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के समक्ष इनकार के बारे में पता चला, जिसमें पहली बार अर्थात् अप्रैल 2004 में प्रतिवादी ने समझौता ज्ञापन का विखंडन करने के बारे में कहा था। उसी को ध्यान में रखते हुये, मुझे प्रतिवादी की ओर से किए गए इस कथन में कोई गुणागुण नहीं मिला है कि वर्तमान वाद सीमा अवधि द्वारा वर्जित है। इसलिए, यह माना जाता है कि वर्तमान वाद सीमा अधिनियम, 1963 के तहत निर्धारित सीमा अवधि के भीतर दायर किया गया था।

ख. यह भी अभिनिर्धारित किया जाता है कि वादीगण विनिर्दिष्ट पालन हेतु डिक्री का हकदार नहीं हैं। विनिर्दिष्ट पालन के दावे के बदले में, वादीगण, "प्रार्थना ख" के अनुसार आंशिक डिक्री के रूप में प्रतिकर के हकदार माने जाते हैं, जिसमें प्रतिवादी को वादी सं. 1 को 15,00,000/- रुपये की राशि का भुगतान करने का निर्देश दिया जाता है।

ग. दिनांक 2 दिसम्बर 1998 के समझौता ज्ञापन के संबंध में विनिर्दिष्ट पालन हेतु वर्तमान वाद, प्रतिकर के अनुदान द्वारा वादी के पक्ष में आंशिक रूप से डिक्री की जाती है।

घ. उपरोक्त राशि इस निर्णय की प्रति प्राप्त होने की तिथि से 6 सप्ताह के भीतर देय होगी। उक्त अवधि के भीतर प्रत्यर्थी द्वारा

भुगतान न किए जाने पर, देय राशि पर ऐसे भुगतान या वसूली तक 12% प्रति वर्ष की दर से ब्याज लगेगा।

ङ. सम्पूर्ण प्रक्रिया के दौरान होने वाले व्यय का वहन दोनों पक्षकारों द्वारा किया जाएगा।

153. तदनुसार, वाद आंशिक रूप से डिक्री है तथा इसलिए निपटान किया जाता है। लंबित आवेदन, यदि कोई हो, खारिज किए जाते हैं।

154. रजिस्ट्री को तदनुसार डिक्री शीट तैयार करने का निर्देश दिया जाता है।

155. निर्णय को तुरंत वेबसाइट पर अपलोड किया जाये।

(चंद्रधारी सिंह)
न्यायाधीश

सितम्बर 6, 2023

जीएस/आरवाईपी/डीबी

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण : *देशी भाषा में निर्णय का अनुवाद मुकद्दमेबाज़ के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा| समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेज़ी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।*